प्रमोद पुस्तक-माला
यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद

प्रमोद-पुस्तकमाला की छब्बीसवीं पुस्तक

उपहार

अनुवादक

सैयद महमूद अहमद 'हुनर'

स० सम्पादक 'हल'

—:०:—

प्रकाशक

प्रमोद पुस्तकमाला

यूनीवर्सिटी रोड, इलाहाबाद

प्रथम वार] सन् १९४५ ई० { मूल्य अजि० २) सजि० २॥)

विषय-सूची

प्रमोद पुस्तकमाला, द्वारा प्रकाशित पुस्तकें—

१ हिन्दी की कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियाँ—ले० 'गिरीश' ३)
२ हिन्दी काव्य की कलामयी तारिकाएँ—सम्पादक-'व्यथित हृदय' ३॥)
३ महादेवी वर्मा—लेखक श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, एम० ए० १॥)
४ प्रयोग कालीन 'बच्चन' लेखक श्री सत्यप्रकाश 'मिलिन्द' १)
५ आधुनिक कथा साहित्य लेखक पं० गङ्गाप्रसाद पाण्डेय एम० ए० २)
६ कर्णफूल (कविता) लेखक नरेन्द्र शर्मा, एम० ए० १)
७ समाधि-दीप ,, लेखक चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र' एम० ए० १॥)
८ पर्णिका ,, लेखक श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, एम० ए० ॥=)
९ लालिमा (उपन्यास) लेखक भगवती प्रसाद वाजपेयी २)
१० प्रतिज्ञा-पूर्ति ,, लेखक रामकृष्ण वर्मा, एल० एल० बी० १)
११ पितृभूमि ,, लेखक श्री राजबहादुर सिंह ॥।)
१२ व्यवधान ,, लेखक रायदुर्गाप्रसाद रस्तोगी "आदर्श" १॥)
१३ बहिन जी ! ,, लेखक महाबीर प्रसाद "प्रवासी" बी० ए० १॥)
१४ स्त्री का हृदय ,, लेखक ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' १॥)
१५ मजदूर नेता (उपन्यास) लेखक श्री इन्द्रजीत नारायण राय, एम० ए० १)
१६ जीवित-समाधि ,, लेखक अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए० सम्पादक 'देशदूत' १॥)
१७ जीवन के सपने (कहानी सग्रह) ,, २)
१८ ग्रामीण जीवन के चित्र ,, ,, ,, १॥)
१९ कन्या प्रबोधिनी भाग १ श्री शान्ता देवी ।=)
२० कन्या ,, ,, २ ,, ॥।)
२१ नवयुवतियों को क्या जानना चाहिये ! लेखिका श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर २॥)
२२ आकाश पाताल की बातें—लेखक पडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी ।=)
२३ बाल-बाँसुरी लेखक श्री रामलखन त्रिपाठी ।=)
२४ बालकों का शिष्टाचार लेखक पडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी ।=)
२५ भूगोल प्रवेशिका भाग १ लेखक श्री राजाराम ॥=)

१

जब मैंने पहिली बार उन दोनों को देखा तो मुस्कराहट की एक लहर मेरे ओठों पर दौड़ गई, जैसा किसी हास्यास्पद चीज को देख कर साधारणतः हुआ करता है। कहाँ सौन्दर्य की देवी और कहाँ एक बेढंगा-सा पत्थर, बेढब-सा, जिसमें कोई भी तो आकर्षण नहीं था। मुझसे फिल्म देखा न गया। बार-बार उन दोनों को देखता था। जितना उस लड़की की निर्भीकता ने मुझे प्रभावित किया उतना शायद उसके सौंदर्य ने न किया होगा। सिनमा में बड़ी भीड़ थी, और प्रायः सभी दर्शक उसी को तन्मयता से देख रहे थे, लेकिन क्या मजाल जो उसे इसका जरा भी अनुभव हुआ हो। वह लम्बी-लम्बी पलकें उठाये लापरवाही से देख रही थी, कि यह क्या हो रहा है?

और कोई लड़की उसकी जगह होती तो लजा जाती, सिकुड़ कर सीट में धँस जाती, या सहम जाती, और पसीना आ जाता।

उसके कपड़े भी सादे थे, न उसने मेकप ही किया था, और बैठी भी थी एक भोंड़े से लड़के के साथ। लेकिन इन सब बातों के होते हुये भी वह इतनी सुन्दर दीख रही थी।

मैंने बालों पर हाथ फेरा, टाई ठीक की और कई बार उसके सामने से गुजरा, उसने देखा ही नहीं। एक बार देखा, तो ऐसी बेपरवाही से कि फिर उधर से गुजरने को जी न चाहा।

पूरे दो घण्टे तक मुझे पता नही रहा कि क्या फिल्म था और क्या हो रहा था। कभी कभी उस लड़के की भी एकाध झलक दिखाई दे जाती थी। लम्बी-सी तोते की सी नाक, अत्यधिक लम्बा चौड़ा माथा,

गालों की हड्डियाँ बडे बेढगे तौर पर बाहर निकली हुई, पिचके हुये गाल, पतली सूखो हुई गर्दन, बस मिश्र की बनी बनाई ममी समझिये।

सूट पहिनने का केवल आडम्बर ही किया गया था, यदि न पहिनते तो कोई अन्तर न पड़ता। और फिर उस पर भी धुआँ-सा लगा हुआ था। मैंने कई बार लाहौल पढी।

भला इन दोनों में कोई भी समानता थी!

फिल्म समाप्त हुआ। जब तक वे हाल मे रहे मैं भी ठहरा रहा। मैंने देखा कि वह लड़का चलते हुये कुछ लंगड़ाता भी था। बाहर वे दोनों किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने जान बूझ कर देर लगा दी कि शायद उन दोनों का कोई अता-पता लगे।

मैंने काली ऐनक लगाई और लड़की को ध्यान पूर्वक देखा। हल्का-हल्का गुलाबी रग, मानो गोधूली का अक्स पड़ रहा हो। लाल पतले-पतले अधर मानो गुलाब की पंखुड़ियाँ, जिनमें एक विचित्र-सा तनाव था, ऐसे लगते थे मानो मुस्करा रहे हों, बडी-बड़ी आँखें जिनमे कुछ लज्जा-सी भी और कुछ निर्भीकता-सी भी, या यह कि दोनों मिले-जुले से! छरहरा और लम्बी कद। मगर इन सबके होते हुये भी जो चीज मुझे सबसे अधिक आकर्षक लगी वह उसकी निर्भीकता थी।

लोग धीरे-धीरे जा रहे थे। मेरा वहाँ ठहरना व्यर्थ-सा लग रहा था। मैंने हल्की-सी सीटी बजाई। 'चलो भाई चलें, फिर कभी सही।'—मैंने मन में कहा। अपनी हलकी सी मोटर साइकिल सँभाली, एक सिगरेट सुलगा कर ओठों में दबाई और चल दिया। मुझे अभी दस मील ऊपर जाना था। पहाड़ी मार्ग, उलटे सीधे मोड़, और फिर सध्या होने लगी थी। मैंने पीछे मुड़ कर देखा, दोनों अभी तक खड़े किसी का इन्तज़ार कर रहे थे।

मैं विचारों में खो गया। यह कौन है! इसे पहिले तो कभी नहीं देखा। अब मैं यहाँ प्रतिदिन आया करूँगा। अजीब शान है इसमें, कुछ बेपरवाही-सी' अभिमान सा ये जो मुझे इतने दिनों से रग-बिरगे

स्वप्न दिखाई दिया करते थे, कहा यह उन्हीं का फल तो नहीं। भला स्वप्न भी कहीं सच्चे होते हैं! मगर उसके साथ यह बुद्धू-सा लड़का कौन हो सकता है? उसका भाई होगा। लेकिन उसका भाई इतना कुरूप तो नहीं होना चाहिये। खैर, कोई होगा। ये रहते कहाँ हैं? मैं चौंक पड़ा। एक मोड़ पर साइकिल ऐसे बेढंगे तौर पर मोड़ी थी कि अगर जरा सी इधर-उधर हो जाती तो मैं खड्ड में होता। मैं सँभल गया, चाल धीमी कर दी, हैट उतार लिया और धीरे-धीरे चलने लगा।

एकाएक मैंने एक मोड़ पर देखा कि एक लम्बी सी कार निकली सड़क पर आ रही है। मैंने चाल और भी धीमी कर दी। अगले मोड़ पर उसी कार को फिर देखा। एक जगह तो मैंने ऊँचे होकर देख ही लिया कि कार में एक जोड़ा बैठा था। शायद वही न हों। जरा सी दूर जाकर देखा तो सचमुच वे ही दोनों थे।

अब बहुत जल्द कार यहाँ से गुजरेगी और अगर मैं मोटर साइकिल पर हुआ तो अच्छी तरह न देख सकूँगा। अतः अभी से ठहर लिया जाय। मैं उतर गया। मोटर साइकिल एक ओर खड़ी करके झूठ-मूठ मरम्मत सी करने लगा। कार आई और मेरे पास ठहर गई। लड़का खाँसते हुये झाँक कर बोला—"क्या मैं आपकी कोई मदद कर सकता हूँ?"

"जी नहीं! धन्यवाद, मैं अभी इसे ठीक किये लेता हूँ।"

"आप इसी रास्ते से जायँगे न?"

"जी हाँ!"

"तो फिर हमारे साथ ही आ जाइये। शाम हो रही है। खामखाह आपको देर हो जायगी।"

मगर मैं इसके लिये तैयार न था कि बात यहाँ तक बढ़ जाय। भला कौन अच्छी भली और तन्दुरुस्त मोटर साइकिल को कार में लादे। खैर, मैंने साइकिल को पीछे रक्खा और स्वयं भी पिछली सीट

पर बैठ गया। वे दोनों आगे बैठे थे। मोटर शोर मचाती हुई जा रही थी।

"माफ कीजिये, मैं आपसे बातें नहीं कर सकता।" मैंने जोर से कहा।

वे दोनों हँस पड़े। लड़की ने पीछे मुड़ कर देखा संध्या के गुलाबी प्रकाश से उसका सुन्दर चेहरा जगमगा रहा था। मैं सरकता-सरकता सीट के दूसरे किनारे तक पहुँच गया, जहाँ से मैं उसे भली-भाँति देख सकता था।

मैंने उन्हे अपना पता बताया। मुझे मालूम हुआ कि वह हमारे पास के पहाड़ की दूसरी ओर रहते हैं। वे मुझे हमारी कोठी पर उतार गये। नवयुवक ने फिर कभी आने का वायदा किया।

* * *

हमारी कोठी पहाड़ की दूसरी ओर थी और काफी ऊँचाई पर होने के कारण चोटी के बिल्कुल निकट थी। यह चोटी भी विचित्र सी थी। न नोकदार, न ऊबड़ खाबड़ बल्कि बिलकुल समतल। जो सकरी सी सड़क हमारे पास से निकलती और निर्झरों तथा कुञ्जों से बचती हुई बल खा कर ऊपर चढ़ती वह चोटी के ठीक ऊपर से गुजरती भी इस तरह कि चलने वाला कुछ दूर तक बिलकुल चोटी के ऊपर चलता दिखाई देता और फिर धीरे-धीरे दूसरी ओर उतर जाता।

चोटी की ऊँचाई पर सड़क के किनारे एक सुन्दर सा सनोवर का वृक्ष खड़ा था। वैसे तो वहाँ और भी वृक्ष थे, लेकिन वह सब से स्पष्ट और अकेला था। उसकी टहनियाँ हर समय वायु के झोको से काना-फूसी करती रहतीं। सूर्यास्त के समय यह वृक्ष बहुत ही भला मालूम होता। जब पहाड़ के पीछे समस्त आकाश सध्या की लाली से जगमगा रहा होता तो उस वृक्ष की छाया बहुत ही अच्छी लगती और यह

निश्चय करना कठिन हो जाता कि कौन अधिक आकर्षक है—सध्या की लाली या छाया की सियाही ।

सध्या समय पक्षियों के झुंड के झुंड वृक्षों के ऊपर से उड़ते हुये पहाड़ की दूसरी ओर जाते होते तो सूर्य की नारंगी किरणों मे उनके पर ऐसे चमकने लगते मानो उन सुन्दर पक्षियों के समूह किसी दूसरे लोक की ओर उड़ कर जा रहे हैं ।

पहाड़ की दूसरी ओर उतरते हुये वह सड़क केवल दो-तीन कोठियों तक ही जाती था, इसलिये शायद ही कभी कोई वहाँ से गुजरता । लेकिन जब मैं शाम के समय तक पास के झरने के किनारे एक ऊंचे से पत्थर पर बैठा होता मेरी दृष्टि आप ही आप उस अकेले सनोवर के वृक्ष की ओर चली जाती । और अगर उस समय कोई चोटी को पार कर रहा होता तो उसकी छाया विचित्र सी लगती । नन्ही सी छाया देर तक हिलती रहती । ऐसा लगता मानो कोई व्याकुल आत्मा शान्ति की खोज में भटक रही हो और उसे कहीं ठिकाना न मिलता हो । फिर धीरे-धीरे छाया लोप हो जाती और सनोवर का वृक्ष अकेला रह जाता ।

सध्या समय साधारणतः मैं दो छाया देखा करता । एक छरहरी सी जिसके पग-पग में सगीत होता, उमगे होतीं, नृत्य होता और साथ ही एक बेढगी सी छाया जिस का लँगड़ापन और भी स्पष्ट हो जाता, जब वे दोनों गुजर रहे होते । पहाड़ के इस ओर घाटी थी, इतनी विस्तृत जिनका कोई अनुमान ही न होता था ।

ऊदे-ऊदे पहाड़ों के लहरिये, लाल और पीले पत्थरों के चमकते हुये ढेर, हरियाले कुञ्ज, आप ही आप उगे फूलों के रग-बिरगे ढेर जैसे कालीन बिछे हों, चमकीली, स्वच्छ नदियाँ जो कभी एक दूसरे से मिलतीं और कभी अलग हो जातीं, और भूरे-भूरे बादल जो सदा इधर-उधर उड़ते रहते । वर्षा के बाद यह रगीन दृश्य और भी स्पष्ट

हो जाते; और दूर तक फुलवारी ही फुलवारी दिखाई पड़ती। लेकिन यह घाटी इतनी बड़ी थी कि इसका विस्तार मेरी दृष्टि की पहुँच से कहीं बाहर था। थोड़ी ही दूर के बाद यह दृश्य धुँधले पड़ने लगते और फिर पृथ्वी और आकाश मिल कर क्षितिज बना देते। इसके आगे कुछ न दिखाई देता। जब रात को आकाश साफ होता और पहाड़ों का चन्द्रमा चमकता तो चाँदनी इस दृश्य पर एक रुपहली और मद्धिम सी कलई कर देती। लम्बे-लम्बे चीड़ के वृक्षों के साये और फैल जाते—और चाँदनी तथा साये एक दूसरे को इस तरह स्पष्ट करते कि यह अनुमान करना कठिन हो जाता कि कौन अधिक आकर्षक है—चाँदनी या साये?

*   *   *

दूसरे-तीसरे दिन उनका नौकर पूछने आया कि क्या वह अपनी कार हमारे गैरेज में रख ले—क्योंकि उनका गैरेज खराब हालत में था। हमने अनुमति दे दी।

दो-तीन दिन तक तो कार न आई। फिर एक दिन वे सब के सब कार में बैठ बाहर गये। मै दिन भर राह तकता रहा कि कब लौटते है। किसी तरह शाम को वापिसी हुई और मुझे निचली सड़क पर कार आती हुई दिखाई दी। उस दिन मै खास तौर से बन सँवर कर तैयार था। कार मेरे पास से गुजरी। वह भी थी, अगली सीट पर शायद उसके पिता थे। मैंने सलाम किया। उन्होंने मुस्कराहट के साथ जवाब दिया—दुर्भाग्य से शोफर कार चला रहा था, वह सीधा ही ले गया, और मैं चुपचाप वापस आ बैठा। जरा सी देर में शोफर कार वापस लाया और उसे गैरेज में छोड़ कर पैदल चला गया। यह तो बड़ी मुसीबत है, मैने दिल में सोचा। यों तो ये कभी यहाँ आयेंगे ही नहीं।

दूसरे दिन जब मैं घूम कर वापस आया तो ड्राइंग रूम मे बड़े ठहाके लग रहे थे। झाँक कर देखा तो वही महाशय बैठे थे जिन्हें मैंने उस लड़की का बाप समझा था। चचाजान से बड़ी बेतकुल्लफी से बातें हो रहीं थीं। मैं भी अन्दर चला गया। चचाजान ने मेरा परिचय कराया बाद में पता चला कि वे दोनो कभी सहपाठी रह चुके थे। मुझे उन्होंने अपने यहाँ आमन्त्रित किया और बोले—"तुम्हारी ही उम्र का मेरा भाँजा आया हुआ है। वह तुमसे मिल कर बहुत प्रसन्न होगा।" मेरा खून सूख गया। वह अभागा इनका भाँजा है, यह सोच कर मेरे मन पर ओस सी पड़ गई।

बातें करते समय वे एक नाम बार-बार लेते थे। वह नाम किशवर का था। मुझे उलझन सी हो गई। आखिर कौन है यह किशवर? अता-पता बाताते नहीं और बातें किये जा रहे हैं, किशवर की। अन्त में मुझसे न रहा गया और मैं पूछ ही बैठा कि साहब यह किशवर हैं कौन? पता लगा कि उनकी छोटी सुपुत्री हैं और उनकी छुट्टियाँ अभी अभी शुरू हुई हैं।

तो मानो ये वही हैं जिन्हे मैंने सिनेमा में देखा था। किशवर!—नाम में भी शान है। बिलकुल वैसी ही शान! नाम क्या होगा? किशवर जहाँ, किशवर सुलतान या शायद किशवर आरा। नहीं, यह नाम तो कुछ भी नहीं हैं, यों ही लगते हैं। बस सिर्फ किशवर ही होगा और यही अच्छा भी लगता है।

रात भर मैं यही सोचता रहा कि यह नाम कितना सुन्दर है। बिलकुल नाम वाली की तरह।

इसके बाद हमारे और उनके बीच मित्रता बढ़ती गई। कितनी ही बार उपहार आये और भेजे गये। कितनी बार वह हमारे यहाँ आये और हम उनके यहाँ गये। फिर इकट्ठा प्रोग्राम बनने लगे, पार्टियाँ होतीं, पिकनिक किये गये। थोड़े ही दिनों में हम आपस में खूब घुल मिल गये।

उनका वह फ़ुज़ूल सा भाँजा मजीद बुरी तरह मुझसे लिपट रहा था। जितना वह मेरी ओर आकर्षित होता, उतना ही मैं कतराता। मुझे वह फूटी आँख न भाता। मै सदा उससे बेरुखी बर्तता। उधर किशवर थी जो मुझसे उतनी ही दूर थी जितनी हमारे मिलने जुलने से पहिले। उसकी वही शान अब भी थी। कभी-कभी तो वह मुझे घमण्डी सी लगने लगती।

कहीं आमना-सामना हुआ और सलाम किया तो हल्के से इशारे से जवाब दिया और चल दी। किसी दरवाजे से निकलने वाली हुई और मैंने बढ कर किवाड़ खोल दिया और थामे रक्खा। बस सिर को ज़रा-सा हिलाया, मुस्कराते हुये ओठ जरा और मुस्कराने लगे। गालों में दो नन्हें-नन्हें गड्ढे पड गये। कभी-कभी चमडे का बेग रह गया या बैडमिण्टन के बाद अपनी नन्हीं-मुन्नी-सी घड़ी भूल गई और मैंने दौड़ कर पकड़ा दी तो देख कर ज़रा-सा मुस्करा दीं। बस खतम, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। न धन्यवाद न कुछ। मैं तङ्ग आ चला था—इस हर घड़ी की मुस्कराहट से। अगर बोलेगी भी तो अजीब उपेक्षा से, जैसे कोई बहुत बडा विद्वान बोल रहा हो। कितनी देर तक बातें करते रहो, लम्बे से लम्बा सवाल पूछ दो, मगर जवाब दो-तीन अक्षरों का मिलेगा, वह भी बडे सोच विचार के बाद और हल्के से स्वर में।

काफ़ी दिनों के बाद यह रवैया बदला। फिर धीरे-धीरे यह झिझक या खिंचाव जो कुछ भी था, दूर होता गया। उसे मेरे कामों से दिलचस्पी होती गई। अब केवल सलाम का जवाब ही बाक़ायदा नहीं मिलता था बल्कि साधारणतः प्रारम्भ भी उसकी ओर से होता था। एक दिन सब बैठे बातें कर रहे थे कि जीवन में सब से बड़ी आकाँक्षा क्या है?

मजीद की पारी आई तो सब के सब हँस पड़े। वह बेचारा शरमा कर रह गया।

"भाई, मैं बताऊँ तुम्हारे दिल की बात?" मैने कहा—"इनकी आकाँक्षा है कि समस्त ससार में एक भीषण अकाल पड़े और सब के

सब दुबले-पतले मरियल से हो जायँ—चिड़चिड़े, कड़वे और शुष्क। और यह शुष्कता फैलती-फैलती यहाँ तक फैले कि पृथ्वी पर शुष्कता के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न दे.।"

"और जो कोई हँसे तो गिरफ्तार कर लिया जाय। वहाँ रोना-पीटना ही सुनाई दे चारों ओर।" किशवर ने कहा।

एक ऊँचा ठहाका पड़ा।

अब किशवर की पारी थी। वह बोली—"और मेरा जी चाहता है कि खूब लाल-सा गोल-मोल चेहरा हो जाय और बहुत वजन बढ जाय। ऐसी स्वस्थ हो जाऊँ कि बस लोग देखा करें।"

मैंने उसकी हँसी उड़ाई—"लडकियाँ तो हर समय दुबले होने की चिन्ता मे रहती हैं और ये हैं कि बिल्कुल उलटी। यह भी नही कि बहुत दुबली-पतली हों, अपनी बहिनों में सब से स्वस्थ और हँसमुख।"

आकॉक्षा भी बताई तो क्या बताई। अच्छी इसको खिल्ली उड़ाई जायगी—मैंने मन मे कहा। अब सब मेरी ओर देखने लगे। मेरा आखिरी नम्बर था। मैने बड़ी उपेक्षा दिखाते हुये कहा—"साहब मेरा तो यही जी करता है कि किसी दिन फोज में कप्तान बनूँ। सिर पर नोकदार टोपी हो, बाँहों पर स्टार लगे हों। क्या शान होती है वर्दी की!"

उसी दिन मैंने सोच-साच कर एक चित्र बनाया। गोल-मटोल लाल-सी गेंद! मोटे-मोटे हाथ पॉव, फुटबाल जैसा चेहरा। नीचे लिखा—'एक महिला, आज से दो वर्ष बाद!"

यह चित्र किशवर को दे दिया। उसने ले लिया। इस प्रकार मानो कुछ हुआ ही नहीं।

सन्ध्या समय मुझे एक चित्र मिला। एक लम्बा-सा बाँसनुमा आदमी जिसके कन्धे पर घोड़े की जीन थी और सिर पर एक फटा पुराना

बिस्तर, जिसमे टूटी-फूटी तलवारे, बन्दूके और पिस्तौ। खोंसे हुये थे। हाथ मे एक लट्ठ था जिस पर एक नोकदार टोपी थी। पीछे-पीछे एक मरियल-सा भद्दा घोड़ा, जिसे एक खाकी रग का कोट और ब्रिजिस पहिना रक्खी थी। कोट की बॉहों पर स्टार लगे हुये थे। नीचे लिखा था—"आज से तीन-चार वर्ष बाद के एक फ़ौजी कप्तान !"

मैं झेंप गया और निश्चय कर लिया कि इसका बदला अवश्य लूँगा। फिर उसने एक दिन हँसी का रुख मेरी ओर कर दिया। मैं उसे सजा देने के लिये एक झूठा चुटकुला सुनाने लगा—"सुनिये, एक दिन एक जगह एक मोटी-सी महिला आई।" उसका रग लाल हो गया, पगली कही की, वह स्वय तो मोटी नहीं थी बिल्कुल, बस आकॉक्षा ही थी न।—"जी हॉ एक मोटी-ताजी महिला, और वे तांगे पर सवार होने लगी। तांगे वाले से सौदा होने लगा। वह बोला—'खुदा के लिये आप जल्दी से बैठ जाइये, कहीं घोड़ा आपको न देख पाये।" फिर ठहाका पड़ा। "खैर तो वे पिछली सीट पर बैठ गई। विश्वास कीजिये कि घोड़ा हवा में लटक गया।" फिर ठहाका—"तांगे वाला कूदा और मोटी महिला से नीचे उतरने के लिये प्रार्थना करने लगा। किसी न किसी तरह वे नीचे उतरीं। अब जो आगे बैठती हैं तो बस घोड़ा उकड़ूँ बैठ गया।" कमरा ठहाकों से गूँज उठा।

"तो क्या बहुत मोटी थीं वे महिला ?" किसी ने प्रश्न किया।

"हॉ, कुछ थी भी, मगर कुछ इतनी मोटी भी नहीं थीं। हॉ मोटी होने की चेष्टा अवश्य कर रही थी।"

सब के सब उसकी ओर देखने लगे। वह मुस्करा कर बोली—"मुझे एक स्वप्न याद आ गया। परसों सबेरे दिखाई दिया था। शायद सबेरे के स्वप्न सच्चे होते हैं न। मैने देखा कि जैसे एक घण्टाघर है। उसके नीचे बहुत से आदमी खड़े हैं। बस भीड़ समझ लीजिये। एक शोर मचा हुआ है लोग घण्टाघर की ओर बार-बार इशारा करते हैं।

पूछने पर पता लगा कि घड़ी आध घण्टा पीछे है। कोई कहता था—केसी आदमी को ऊपर भेजो, कोई कहता था सीढ़ी मँगाओ। इतने में एक काले रंग की लम्बी सी कार रुकी। (ऐसी ही मेरी कार थी) और एक लम्बा-सा लडका कालेज ब्लेजर पहिने निकला। अपनी घड़ी देखी, फेर क्लाक देखी और लोगों से बोला—'इतनी सी बात है, यह लो।" यह कह कर उसने इधर-उधर देखा और जल्दी से हाथ ऊँचा किया। मैं झूठ नहीं बोलती, न जाने पहिले से वह इतना लम्बा था या उसी समय लम्बा हो गया। उसने बड़े इतमीनान से क्लाक की सुइयाँ ठीक कर दीं। लोग उसे अपनी पगड़ी सम्भाल कर देख रहे थे। बच्चे बेहोश हो गये, स्त्रियाँ चीखें मारने लगीं, हुल्लड़ मच गया—पकडना, लेना, यह क्या बला है। लडके ने जब यह हाल देखा तो वह सीटी बजाता हुआ लम्बे-लम्बे दो डग रख कर आँखों से ओझल हो गया।"

अब सब के सब मेरी ओर देख कर हँसने लगे। मैं फिर झेंप गया।

"भई, यह तो चिपका दिया खूब।" कोई बोला और मुझे अपने नाटेपन का अनुभव होने लगा।

फिर एक दिन मैं बाहर एक सीनरी बना रहा था। शाम हो चली थी। मैं व्यस्त बैठा था। किशवर मेरे साथ बैठी झुक कर चित्र देख रही थी, इतने निकट से कि उसकी गर्म-गर्म सुगन्धित साँस मेरे गालों को छू रही थी। मेरा चेहरा जल रहा था। अँगुलियाँ कुछ-कुछ काँप रही थीं।

"कहीं आस्मान भी हरा हुआ है?" वह बोली।

"यह हरा है क्या?"

"हरा न सही, कुछ हरापन लेता हुआ सही, इस तरह के आस्मान देखने का हमें तो कभी संयोग नहीं हुआ। मगर यह पेडों की चोटियाँ ऊपर से गुलाबी होना शुरू हुई हैं?"

"क्षितिज की जगमगाहट से गुलाबी हो गई।" मैंने कहा—

"क्षितिज कहाँ धरी है इस समय ?"

"तुम्हारे चेहरे का अक्स जो पड़ रहा है" मैंने कनखियों से देखा। उसका गुलाबी चेहरा एकदम लाल पड गया।

"यह लीजिये, सारा चित्र ही लाल हो गया।" मैंने मुस्कराते हुये कहा।

उधर मजीद से खूब छन रही थी। मुझे पता चला कि वह किशवर का मगेतर है और मगनी भी बहुत दिनों की है। मैं सदा उसका उपहास किया करता और उपहास भी ऐसे स्पष्ट शब्दों में कि शायद कोई और होता तो बिगड़ ही जाता। लेकिन क्या मजाल जो उसके काले माथे पर बल भी आया हो शायद यही कारण था कि मैं उसे योग्य ही न समझता था कि वह किशवर से प्रेम करे। मैं उससे साफ-साफ कहा करता—"तुम कितने संगदिल हो, तुम्हारा दिल कितना छोटा है, बिल्कुल चिड़िया के बच्चे जितना। तुम कितने स्वार्थी हो। तुम ५ लड़की का जीवन नष्ट करने पर तुले हुये हो सिर्फ इसलिये कि वह ... अच्छी लगती है। बल्कि अगर यह कहा जाय तो बेजा न होगा कि वह तुम्हारे सम्बन्धियों में से है, और तुम्हारे बस में है। और उस लड़की का बड़ा दुर्भाग्य है, वह अजीब उलझन में फँसी है और बोल भी नही सकती।"

वह हँस कर कहता—"भैय्या, मेरे पास तो ले दे के यही सहारा है। अगर मै सुन्दर होता तो भी उसके इसी तरह नाज उठाता और अगर कुरूप हूँ तो भी सदा ऐसे ही रहूँगा। रूप-रग तो खुदा की देन है इसमें किसी का बस नहीं, रहा दिल, सो इसमें किशवर के प्रति जो आदर और प्रेम है उसकी कोई सीमा नही और यह सदा रहेगा।"

"मगर मुझे तो यही लगता है कि तुम्हारा दिल बहुत ही ... है। अगर इसमे जरा भी उदारता होती तो तुम किशवर का जीवन नष्ट

करते। भला रग-रूप का अन्तर क्यों नहीं पड़ता। और फिर उस दशा में जब एक अत्यन्त सुन्दर है और दूसरा अत्यधिक कुरूप"

जब मै उसे कुरूप कहता तो पहिले तो वह हँस कर टाल देता लेकिन फिर उसे जैसे झटके से लगने लगते। उसके कुरूप चेहरे पर व्याकुलता के चिह्न स्पष्ट हो जाते, ओठ काँपने लगते, आँखे और भी डरावनी होने लगतीं जो धुँधली हो जातीं। लेकिन वह बडे धैर्य से काम लेकर आँसू रोक लेता, मगर शायद एकान्त में न रोक सकता।

यह ज्यादती मै हर दूसरे-तीसरे दिन करता लेकिन उसने कभी बुरा न माना। कई बार तो मुझे उस पर दया आने लगी और मैंने निश्चय कर लिया कि अब उसे कुछ न कहूँगा। लेकिन न जाने कौन-सा भाव था जो मुझे फिर उसको इसी तरह छेड़ने पर लाचार कर देता। किसी-किसी समय तो मे उसे ऐसे शब्दो से सम्बोधित करता कि बाद में घण्टों पछताता। वह सदा भद्दा-सा मुँह बना कर कहता —"तुम देख लेना, उसे सुन्दर लड़के से अधिक प्रसन्न रक्खूँगा। मेरे जीवन का प्रति क्षण उसकी सेवा के लिये अर्पित होगा। रग रूप का क्या है, यह चाव तो थोड़े दिनों का है। सच्चा प्रेम सदा रहता है। मुझ में सुन्दरता न सही प्रेम तो है।"

मै चिढ कर कहता --"तुम मे दोनों गायब हैं।"

जब हम घूमने को निकलते या सिनेमा जाते तो मजीद बिछ-बिछ जाता, किशवर को प्रसन्न करने के लिये वह कितनी कोशिश किया करता एक बार किशवर ने फूलों के एक गुच्छे की प्रशसा की जो खड्ड के दूसरी ओर था, जरा-सी देर मे मजीद गायब हो गया और कई घण्टों के बाद जब आया तो उसके हाथ मे वही गुच्छा था और ओठो पर एक भद्दी मुस्कराहट। कपडे फटे हुये थे और शरीर लहू-लोहान था। न जाने विचारा किन-किन कठिनाइयो से खड्ड में उतरा होगा।

कई बार देखा कि मजीद साहब के हवास बिगडे हुये हैं, हवाइयाँ उड रही हैं, भागे-भागे फिर रहे हैं। कारण पूछते हैं तो पता चलता

है कि किशवर के सिर में दर्द है, आप हैं कि डाक्टर के लिये दस-दस मील के चक्कर लगा रहे हैं, घड़ी-घड़ी मेरे पास आ रहे हैं, भाँति-भाँति के यत्न कर रहे हैं।

एक दिन मेरे पास घबराया हुआ आया, थोड़ी ही देर बैठा होगा कि चकरा कर गिर पड़ा। बाद मे पता चला कि किशवर की तबियत खराब है और मजीद ने पूरी दो रातें बिना सोये बिता दीं!

उसकी बातें भी साधारणतया किशवर ही के सम्बन्ध मे होतीं, वह बड़े आदर से उसका नाम लेता, मानो अपने से किसी बड़े की बात कर रहा हो।

'आज किशवर वहाँ गई थीं, 'उन्होंने यह कहा,' 'वह कल यहाँ आयेगी।' ऐसा लगता था मानो यह उसी का नाम लेकर जीवित है और किशवर उसके जीवन का केवल एक महत्वपूर्ण अंश ही नहीं बल्कि शायद उसकी आत्मा का भी एक अंग बन गई है। लेकिन यह मैं कभी न समझ सका कि किशवर भी उससे प्रेम करती थी या नहीं। वह बड़ी शान से उसकी बावली-बावली बातों का जवाब देती। उसने कभी बेरुखी नहीं दिखलाई और न कभी मैंने उसे मजीद के साथ हँसते हुये देखा। जब वह उसके साथ होती तो बिल्कुल चुपचाप सी रहती, जैसे कुछ सोच रही हो। उस समय वह कुछ गम्भीर सी दिखाई पड़ती।

यद्यपि मजीद दया का पात्र था और उतना बुरा भी न था जितना मुझे लगता, लेकिन एक सुन्दर युवती के साथ चलने मे उसकी कुरूपता और अधिक स्पष्ट हो जाती, उसका यही साहस मुझे खलने लगता, क्योंकि किशवर धीरे-धीरे मेरे जीवन में छा रही थी।

मजीद कभी-कभी मेरी बलिष्ट बाहों को अपनी सूखी हुई अँगुलियों में लेकर कहता—"क्या हुआ जो मुझ में बल नहीं, मेरा शरीर इतना सुन्दर न सही लेकिन तुम्हारा तो है। मेरे लिये यही बात क्या थोड़ी है कि मेरे प्यारे दोस्त का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है।"

यह शब्द किसी और के मुँह से सुन कर शायद मैं फूला न समाता, लेकिन उसके मुँह से यह पराजय की घोषणा लगती। अगर मैं यह कह दूँ कि मै अत्यन्त स्वार्थ से काम ले रहा था तो अनुचित न होगा। यह मेरी ही बातों का प्रभाव था कि उसे हर समय अपनी कुरूपता का खयाल रहने लगा। शायद वह मुझे देखते ही अपने आपको तुच्छ समझने लगता। कई बार वह बच्चों की तरह मचल जाता और मुझ से पूछता—"एक बात बताओगे? क्य मैं सचमुच इतना कुरूप हूँ जितना तुम कहते हो?"

मैं कहता—"हाँ इसी तरह! .."

वह बड़ी निराशा से कहता—"तो अब कुछ नहीं हो सकता? क्या मैं सदा ऐसा ही रहूँगा?"

मैं सिर हिला कर कहता—"हाँ, इसी तरह रहोगे?"

"तो क्या मैं किसी के प्रेम के योग्य नहीं हो सकता?"

मैं हँस कर-कटु स्वर में कहता—"यह क्या प्रेम-प्रेम तुम करते रहते हो हर समय? तुम से किस भड़ुये ने कहा है कि अवश्य प्रेम करो, अगर खुदा ने ऐसी बुरी सूरत दे दी है तो सतोष करके बैठ रहो या किसी अपनी जैसी कुरूप लड़की से प्रेम करने लगो, क्योंकि शायद वह भी इसी तलाश मे हो। मगर खुदा के लिये सुन्दर लड़कियों का विचार छोड़ दो। यह प्रेम वगैरह फिजूल बाते हैं। तुम कभी किसी सुन्दर लड़की को प्रसन्न नहीं रख सकोगे, मैं लिख दूँ कहो तो।"

वह मेरे कन्धे पर अपना सिर रख देता और बड़ी विवशता से रोने स्वर में कहता—"मेरे खुदा, मैं क्या करूँ, कैसे अपने पगले मन को समझाऊँ। मेरे लिये तो दुनिया में अगर कोई भी आकर्षण है तो वह किशवर है। अगर उसे मेरे जीवन से अलग कर दिया जाय तो शायद ही उसमें कोई दिलचस्पी रहे। भला इसमें मेरा दोष क्या है? क्या मेरा मन नहीं चाहता कि मैं इतना कुरूप न होता?"

कभी-कभी एक विचित्र-सा ख्याल मेरे मन मे उत्पन्न होता। शायद किशवर को मजीद का कोई खयाल न हो। और अगर किसी दिन यह मजीद की पहुँच से बाहर हो गई, तो क्या होगा? संसार में हमारा जीवन उन रेखाओं पर निर्भर है जिन्हें भाग्य का हाथ अन्ध-धुंध खींच रहा हो। बहुत-सी रेखायें एक दूसरी के बराबर होती हैं और सदा दूर ही दूर रहती हैं। बहुत सी दूर-दूर होती जाती हैं, बहुत सी बड़ी दूर से आकर एक दूसरी को काटती हैं और यह किसे पता कि कब और कहाँ किसकी रेखा किसकी रेखा को काट देगी।

सध्या का समय था। मेरे सामने बर्फ से ढकी चोटियाँ सूर्य की अन्तिम किरणों से झिलमिल-झिलमिल कर रही थीं। मै बैठा चित्र बना रहा था। किशवर मेरे पास बैठी मुझे तरह-तरह की सलाहें दे रही थी जिनको अगर मैं मानने लगता तो चित्र कुछ का कुछ हो जाता। मैं उसकी अनवरत बातों से तग भी आ चला था, मगर यह भी अवश्य चाहता था कि यह मेरे पास ही बैठी रहे।

कार की आवाज ने हमें चौंका दिया। मजीद कार छोड़ कर वापस जा रहा था। वह मजीद को देख कर उठ खड़ी हुई।

"कहाँ?" मैंने पूछा।

"इनके साथ।"

"इतनी जल्दी क्या है ठहर कर सही।"

"मगर यह जो जा रहे हैं।" वह बोली।

"भई, मै तुम्हे छोड़ आऊँगा।"

"न जाने आपको इन व्यर्थ कामो से कब छुट्टी मिले, कैसे उलटे सीधे काम हैं आप के भी!"

मै चिढ सा गया—"अच्छा अब बैठ जाओ, अँधेरा होने से पहिले ही चले चलेंगे।" मैने कहा।

"मगर वह भी तो अकेले ही जा रहे हैं।"

'रास्ता तो नहीं भूल जायेगे वे ?" मैंने जरा कड़ुवे स्वर में कहा।

"अच्छा तो खुदा हाफिज !" (ईश्वर रक्षा करे) वह चलते हुये बोली। मै लज्जित होकर रह गया। किशवर के इशारे से मजीद भी ठहर गया था।

किशवर, कोई हर्ज तो नहीं था अगर तुम मेरे साथ चलती।

"तो उनके साथ जाने ही मे कौन सा हर्ज है ?"

मेरी अँगुलियों से ब्रुश छूट कर जमीन पर गिर पडा। वह जा रही थी। मजीद सामने सड़क पर खडा था। वह मानो मुझ पर हँस रहा था, उसकी डरावनी आँखे मेरा उपहास कर रही थी।

जब मै वापस आया तो मुझे कुछ क्रोध भी आ रहा था और कुछ हँसी भी। खिसियानी सी हँसी, जो साधारणतया हारने के बाद आया करती है। मै अपने कमरे मे पहुँचा। समझ ही मे न आता था कि क्या करूँ क्या न करूँ। शीशे के सामने खड़े होकर काले से चेहरे पर मूँछें दाढी बनाई, फिर अपनी सूरत देख कर खूब मुस्कराया। हँसा भी। लो मौलाना, इसी शक्ल पर नाज था ? अब मजे करो, वह भोदू तुमसे कहीं सुन्दर है। आखिर तुम हो क्या बला ? आखिर क्यों हो किसी को तुम्हारा खयाल ? तुम उसके लगते क्या हो ? मूर्ख कहीं के। मुसीबत यह है कि तुम सोचते बहुत अधिक हो और वह होता है सब व्यर्थ ही। मुफ्त मे हवाई किले बनाते रहते हो और फिर तुम्हे काम क्या है ? दिन भर बन्दूक उठाये जगलों में फिरना, झरनों मे छलाँगे लगाना, उलटे सीधे चित्र बनाना और जहाँ कोई अच्छी सूरत दिखाई दी वहाँ घण्टों खड़े रहना।। सचमुच बहुत ही उलटे सीधे काम हैं आपके। मजीद समझदार है, वह उसका जिन्दगी भर का होने वाला साथी है, तुम्हारी तरह ला परवाह और अहमक नही है। वह उसके लिये सब कुछ है

मगर—मगर'—मैं कोच पर गिर पड़ा। क्या वह बेकार सा लड़का उस किशवर को अपनी बना लेगा?

किशवर की आँखें, उसकी लम्बी-लम्बी पलकें, वह गुलाब की पखुड़ियों जैसे खिले हुये ओठ किसी और के हो जायँगे? क्या उस सुन्दर मूर्ति के साथ कोई और चला करेगा?

जीवन में पहिली बार मैंने अपने आपको पराजित अनुभव किया। मै मजीद को हारा हुआ समझा करता और इसीलिये उसे इतना तुच्छ समझता। लेकिन कौन हारेगा, कौन जीतेगा? यह मुझे ज्ञात न था। और ज्ञात भी कैसे होता? जीवन की रेखाओं के खेल को कौन जानता है, कि कब कटेंगी और कब दूर हो जायँगी।

क्यों न इस पराजय का स्वागत् मुस्कराते हुये किया जाय?

तीसरे दिन ही किशवर की वर्षगाँठ थी। मेरा जी नहीं चाहता था कि कोई उपहार भेजूँ। और भेजता भी किस मुँह से? उसकी माँ हमारे यहाँ आई थीं। चलते हुयें बोली—"तुम्हें पता है? कल किशवर की साल-गिरह है।"

"अरे! सालगिरह है? सचमुच?" मैंने मक्कारी से कहा।

"क्या उपहार भेजोगे तुम उसके लिये?"

"उपहार?—क्या उपहार भेजूँ? आप ही बताइये।" मै एक अजीब सी कशमकश मे था।

"भई, योंही कोई छोटी-मोटी सी चीज भेज देना, जैसे—वैसे—कोई अपनी बनाई हुई तस्वीर ही भेज देना।"

उन्होंने एक सीनरी को पसन्द किया।

दूसरे दिन मै चित्र भेजते हुये सोचने लगा कि इस पर लिखूँ क्या? मेरा स्थान ही क्या है उसकी दृष्टि मे। आखिर सोच-साच कर लिखा—"उसकी ओर से जिससे तुम्हे अत्यन्त घृणा है!"

दोपहर को एक पत्र आया जिसमें लिखा था—"उनको बहुत

बहुत धन्यवाद, जिनसे मुझे सचमुच अत्यधिक घृणा है। और शायद सदा रहेगी।"

कुछ दिन और हम वहीं मिले। मैं अपने आपको समझाता रहा—"भला अब रह ही क्या गया है ? उसने साफ-साफ तो कह दिया है कि उसे मुझसे घृणा है और अत्यधिक घृणा, और सदा रहेगी।"

दूसरे दिन दोपहर के बाद मै उसी पत्थर पर बैठा चित्र बना रहा था। पहिले चित्र पूर्ण ही न हुआ था, मैं सन्ध्या की प्रतीक्षा कर रहा था। दुर्भाग्य से उस दिन विचित्र बेढगे से बादलों ने आकाश को ढाँप रखा था। अच्छा खासा अँधेरा हो चला था। इतने में कोई मेरे साथ आकर बैठ गया। बिलकुल चुपके से। मैने कनखियों से देखा, यह किशवर थी। मैंने प्रकट यही किया कि जैसे मुझे पता ही नहीं कि कोई आया है। वह फिर झुक कर सीनरी देखने लगी। उसकी गर्म-गर्म सुगन्धित साँस मेरे गालों से लग रही थी। मेरा चेहरा तमतमा उठा और अँगुलियाँ काँपने लगी मगर मैने उसकी ओर नहीं देखा।

"यह रग फिर गलत भर रहे हैं आप ?" वह बोली।

मै चुप रहा।

"लाइये ब्रुश इधर दीजिये। इतने दिन हुये तस्वीर बनाते और यह भी पता नहीं कि पत्थर गुलाबी नहीं होते।"

"रोशनी पड़ रही है।" मैंने बिसूरते हुये कहा।

"कहाँ से आ गई रोशनी इस वक्त ? कितना अँधेरा हो रहा है।"

"संध्या की लाली होगी।"

"मगर यह तो तस्वीर की तस्वीर ही गुलाबी हो रही है। हर जगह सन्ध्या ही है क्या ?"

"तो फिर किसी के चेहरे का अक्श पड़ रहा होगा।" मैंने मुँह बना कर कहा।

"किसके चेहरे का ?"

"क्या पता होगा कोई ।"

मैने फिर कनखियों से देखा । उसकी आँखों में मुस्कराहट नाच रही थी । मैं बड़ी मूश्किल से मुस्कराहट रोक सका ।

"अब रहने दीजिये, ये अँगुलियाँ भी थक गई होंगी बेचारी ।"
वह ब्रुश छीनते हुये बोली ।

"भला तुम्हें इन अँगुलियों से क्या दिलचस्पी हो सकती है ।"

"इतनी ज्यादा, जितनी शायद आपको भी न हो ।"

मैं जैसे चौंक पड़ा । मैने निकट से उसकी आँखों में आँखें डाल कर देखा । उनकी गहराइयों मे एक तूफान मचा था ।

* * *

और उस रात बड़ा जबर्दस्त तूफान आया । कहते हैं कि ऐसा तूफान वहाँ बहुत दिनों से नहीं आया था । रात भर कोई आसमान और जमीन को झिंझोड़ता रहा । वायु के तीव्र थपेड़ो ने ऊँचाइयों से बड़े-बड़े पत्थरों को लुढका दिया । दानव रूपी वृक्षों को तिनकों की भाँति उठा फेंका, पानी की तेज बौछार ने सब कुछ ऊँचा-नीचा कर दिया । पहाड़ो की चोटियों से पानी की धारा बह रही थी । न जाने इतना पानी आ कहाँ से रहा था । हवा चिघाड़ रही थी, जगलों में भयानक चीखे सुनाई दे रही थीं । बिजली रह रह कर कड़कती और एक भयनाक शोर के साथ कहीं गिरती । सब के सब सहमे हुये बैठे थे । खिड़कियों से बाहर पानी ही पानी दिखाई देता था । शायद नदियाँ चढ़ आई थीं मूसलाधार मेह बरस रहा था ऐसा लगता था मानों तूफान कभी समाप्त ही न होगा, सब कुछ बह जायगा, कुछ न बचेगा ।

बिजली जोर से कड़की, और एक भीषण आवाज सुनाई दी । इतने निकट कि मै देखने बरामदे में आ गया । चारों ओर घोर अन्धकार था । मुझे एक टिमटिमाती हुई रोशनी दिखाई दी जो निकट आती जा रही थी । कोई आदमी रोशनी लिये आ रहा था । ज़रा सी

देर में वह बिलकुल निकट आ गया। यह मजीद था। पानी में लथ-पथ, भारी लबादे में लिपटा हुआ, गिरता पड़ता आ रहा था। उसने बताया कि उसकी छत का एक भाग गिर पड़ा था और एक नोकदार लम्बा सा लकड़ी का टुकड़ा किशवर की माँ की बाँह में घुस गया था। इतनी देर हुई, खून रुकता ही न था, वे सारे यत्न कर चुके थे। मजीद मुझे लेने आया था, कार जा न सकती थी क्योंकि सारी सड़क वृक्षों से पटी पड़ी थी। वैसे हमारे यहाँ भी मुझे ऐसे समय बाहर निकलने की इजाजात देते हुये हिचकिचाते थे। बड़ी मुश्किल से मुझे इजाजत मिली और मैं एक लम्बी सी बरसाती ओढ़ कर बाहर निकला। खून को जमा देने वाली शीतल वायु का एक झोंका आया और जैसे शरीर में से निकल गया हाथ पाँव ठडे हो गये।

पहले पहल तो ऐसा लगता था मानो वायु के तेज झक्कड़ हमें आगे बढ़ने ही न देंगे। मगर फिर धीरे-धीरे फिसलते, लुढ़कते हुये हम आगे सरके। जब हम चोटी पर से गुजरे तो मेह की बौछार और तूफान ने हमें पीछे ढकेल दिया मैंने मजीद का हाथ अपने हाथ में लिया और उसे सहारा देता हुआ आगे बढ़ा। धीरे-धीरे डगमगाते हुये कदमों से हम दूसरी ओर उतर गये। मुझे पता नहीं, शायद वह उस समय बोलने की कोशिश कर रहा था। या शायद बोल ही रहा था बस इतना याद है कि मैंने कोई जवाब नहीं दिया। वहाँ सब हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। किशवर की माँ की बाँह सचमुच बहुत बुरी तरह घायल हुई थी और रक्त भी बड़े वेग से बह रहा था, एक बार तो मैं घबरा ही गया। क्योंकि लकड़ी का टुकडा केवल बुरी तरह अन्दर घुसा हुआ ही नहीं था बल्कि कुछ अन्दर ही टूट भी गया था। उसके लिये एक छोटे से आपरेशन की आवश्यकता थी। मेरी हिम्मत जवाब देने लगी, फिर कुछ धैर्य बँधा सिर्फ किशवर की उपस्थिति से, क्योंकि वहाँ वही थी जो जरा भी निराश नहीं थी, उसके चेहरे पर जरा भी घबराहट नहीं थी। वही शान, वही गम्भीरता और वही मुस्कराते हुये ओठ।

अगर वह वहाँ न होती तो मै सब कुछ बिगाड़ कर रख देता। उसने मेरे साथ खड़े होकर मुझे नश्तर पकड़ाये, बार-बार मेरे माथे से पसीना पोछा, जो इतनी सर्दी में भी मुझे आगया था अपनी बातों से मेरा उत्साह बढाती रही। किसी न किसी तरह यह सब खत्म हुआ और मैंने लकड़ी के टूटे हुये टुकड़े को निकाल कर घाव अच्छी तरह बाँध दिया। हाथ धोते समय मैने खिड़की मे से देखा, तूफान खत्म हो चुका था और प्रभात के चिन्ह प्रकट हो रहे थे।

और जब मै वापस आ रहा था तो किशवर मेरे साथ थी। हम चोटी पर पहुँचे। वहाँ सनोवर का वृक्ष ज्यो का त्यों खड़ा वायु के झोंको से बातें कर रहा था। मै एक ऊँचे से पत्थर पर बैठ गया। सामने झिलमिल-झिलमिल करती हुई हिमाच्छादित चोटियो से सूर्य उदय हो रहा था। समस्त वातावरण धुला हुआ था, मुझे घाटी इतनी विस्तृत दिखाई दी कि पहिले कभी न रही होगी। वह रगीन दृश्य बहुत दूर तक फैले हुये थे। जल प्रपातो का सगीत पहिले से कही अधिक मधुर था, बहुत-सी सोई नदियाँ और नाले जाग उठे थे। सुगन्धित और शीतल वायु के हल्के-हल्के झोंके किशवर के बालो से खेल रहे थे।

देखते-देखते ही चोटियाँ सुनहरी हो गईं, मानो पिघला हुआ सोना वह रहा हो। चन्द सुनहरी किरणे किशवर के चेहरे को छू गईं और उसका चेहरा जगमगाने लगा।

जीवन कितना विचित्र है, शान्ति के बाद तूफान—और तूफ़ान के बाद फिर शान्ति। रात ऐसा लगता था मानो सब कुछ समाप्त हो जायगा, लेकिन अब नये सिर से जीवन आ गया था। मैं योही बैठा बेपरवाही से अपनी अँगुलियों से खेल रहा था। किशवर मेरी अँगुलियों को अपने प्यारे-प्यारे हाथों में लेकर बोली—"कितनी अजीब हैं ये अँगुलियाँ! बेला के तारों पर चलती हैं, कड़े नश्तर भी पकड़ लेती हैं और ब्रुश से खेलते-खेलते ऐसे चित्र भी बनाती हैं।"

मैं जैसे चौक पडा "तो क्या सचमुच तुम्हें ये अँगुलियाँ अच्छी लगती हैं ?"

मैंने उसकी आँखों मे आँखे डाल कर देखा। उसका सिर मेरे कन्धे से आ लगा। सहसा मुझे ऐसा लगा मानो सृष्टि खिलखिला कर हँस पडी। असख्य तारे एक दूसरे से टकरा कर टूट गये।

वही हल्की-हल्की ज्योति थी, वायु के हलके-हलके झोंके थे—फिर ज्योति बढती गई, झोंके तेज़ होते गये, हृदय की धडकन के साथ जीवन की धडकन भी तेज होती गई।

और उसके बाद एक मधुर-सी आत्मविस्मृति छा गई जिसमे अगर कुछ बाधा होती थी तो वह फरिश्तों के परो की फडफडाहट थी।

जीवन कितना है, तूफान के बाद शान्ति—शान्ति के बाद फिर तूफान!

तब मुझे पता चला कि दुनिया इतनी नीरस और फीकी नहीं जितनी मै समझता था। मुझे जीवन कभी इतना रगीन नही दिखाई दिया, मुझे वायुमण्डल मे रग-बिरगे लहरिये दिखाई पड़ते, सूखी हुई टहनियो मे नई-नई कोपले दिखाई देतीं, हम दोनो के गिर्द तितलियाँ नाचतीं, चीड के नोकीले पत्ते सरसराते, सुगन्धित फूल झूमते, वायु-मण्डल गीतों से गूँज उठता। स्वर्गीय राग आत्मा की गहराइयों मे उतर जाते और जीवन नृत्य करने लगता।

मुझे ऐसा लगता जैसे एक फूलों की क्यारी। के किनारे पर बैठा हूँ, फूल हवा से लहलहाते हुये झुक-झुक कर मेरे चरण चूम रहे हैं और मैं हूँ कि बेपरवाही से बैठा हूँ। फिर रात को विचित्र स्वप्न दिखाई पड़ते मानो एक तड़पते हुये तारे का समुद्र है जिनमे एक नौका है जिसे मैं चला रहा हूँ। आकाश पर न चाँद है न सूर्य, न तारे, कुछ भी नहीं, बस एक शून्य है, चारो ओर धुँधला सा शून्य नौका में मेरे साथ कोई बैठा है जिसकी सूरत किशवर से मिलती है। न कोई मजिल सामने है,

न कहीं पहुँचने की इच्छा है न कहीं किनारा दिखाई पड़ता है बस यही चला रहा हूँ।

इसके बाद किशवर मेरे निकट होती गई और मजीद से दूर। उन दोनों के जीवन की रेखायें एक दूसरे से दूर होती चली गई। मैं अब भी चित्र बना रहा था लेकिन अब चित्र दृश्यो के नहीं होते थे बल्कि अधिकतर किशवर ही के होते थे। उसके चित्रों से मेरा कमरा भर गया था लेकिन मन नही भरता था।

मजीद को पता नहीं कि मालूम था या नहीं। वह उसी तरह मुझसे पागलों की सी बातें किया करता, वैसा ही प्रेम और वैसा ही मानोभाव प्रदर्शित करता। किशवर को हर समय मेरे साथ देख कर कभी उसके माथे पर बल नहीं आया। कभी-कभी किशवर उसके साथ भी चली जाती। वह शायद इस थोड़े से भाग पर ही सन्तुष्ट था या मुझ पर इतना विश्वास करता था कि कभी उसके मन मे कोई सन्देह ही उत्पन्न न हुआ। मगर मेरा रवैया पहिले ही जैसा था। मैं अब भी उसे छेड़ता, बड़ी बेरुखी से पेश आता और बात-बात मे तङ्ग दिल कह देता। वह सब कुछ हँसते हुये सुन लेता मगर किसी समय एकान्त मे न जाने आकाश की ओर फटे-फटे नेत्रों से क्या-क्या देखता। ऐसा लगता मानो कोई खोई हुई वस्तु ढूँढ रहा हो।

एक चमकीली सर्द दोपहरी को हम बाहर पिकनिक पर गये। मैंने बड़े भडकीले रग की पतलून पहिनी और वैसी ही जर्सी। मजीद भद्दे से कपड़ों में लिपटा हुआ था।

वहाँ एक बहुत सुन्दर जल—प्रवाह था। तय हुआ कि जल प्रपात को बैक ग्राउड में लेकर चित्र खींचे जायँ। मेरे हाथ में कैमरा था। मैंने सब से पहिले किशवर को एक अच्छे से पोज़ मे एक पत्थर पर बिठाया और फोकस करने लगा था कि मजीद भी सरकता-सरकता आया और उसके साथ खडा हो गया। वैसे उसका किशवर के साथ खड़ा होना साधारण सी बात थी, आखिर वह उसका मगेतर था, लेकिन मुझे बहुत बुरा लगा, मुझसे न रहा गया।

"अरे भाई मजीद ! अलग खिंचवा लेना अपना चित्र !"

मगर वह मुस्कराता हुआ वहीं खड़ा रहा ।

"भाई, एक ओर हो जाओ, बहुत बुरे लग रहे हो, लाहौल विलाकूवत !"

"आखिर हर्ज ही क्या है ?" वह बड़ी नम्रता से बोला ।

"यकीन मानो, तुम अच्छे नहीं लग रहे हो और किशवर के साथ तो और भी चार चाँद लग गये हैं ।" मैंने हँसते हुये कहा—उसका मुस्कराता हुआ चेहरा एक दम मुर्झा गया ।

"अभी सब का इकट्ठा ग्रूप खींचते हैं, उसमें तुम्हारी तस्वीर भी आजायगी ।"

वह चुपचाप एक ओर हो गया । मैंने किशवर के बहुत से चित्र उतारे ।

फिर सब का ग्रूप होने लगा । मजीद फिर किशवर के साथ आ खडा हुआ । न जाने मैं इतना स्वार्थी क्यों बना हुआ था । मेरा जी न चाहता था कि मजीद उसके साथ खडा हो ।

"भाई मजीद, एक सुन्दर सा फूल तो लगा लो अपने कोट के काज में ।" मैने कहा ।

"कैसा हो ?"

"बस कोई हलका-हलका हो, बहुत भड़कीला न हो ।"

वह झाडियों में गायब हुआ और इधर मैंने जल्दी से दो-तीन चित्र और ले लिये ।

जरा देर बाद वह हाँपता हुआ आया । उसके कालर में एक ऊदा सा फूल लगा हुआ था ।

'यह तस्वीर तो खिच गई अगली तस्वीर में सही ।" मैंने मजीद से कहा ।

वह कुछ न बोला, न उसके चेहरे पर कोई परिवर्तन दिखाई पड़ा। इतना अवश्य हुआ कि वह हम सब से पीछे रह गया। अगले चित्र में सब थे लेकिन मजीद नहीं था, न जाने वह कहाँ गायब हो गया,-किसी को ध्यान ही न रहा।

मैं अपना हैट जल-प्रपात के पास भूल आया था। वापस लेने चला तो देखा कि रास्ते में कोई जमीन पर झुका बैठा था। पास जाने पर मालूम हुआ कि यह मजीद था और एक छोटे से पानी कि गड्ढे पर झुका हुआ था। मै समझ न सका कि वह क्या कर रहा है, वह उसी तरह झुका रहा।—शायद अपना चेहरा देख रहा था। मैं दबे पाँव उसके साथ जा खड़ा हुआ। अब पानी में दो अक्स दिखाई पड रहे थे। एक मुर्झाया हुआ सा और दूसरा खिला हुआ और पूर्ण जीवित।

उसने पीछे मुड़ कर नहीं देखा, वह कुछ देर दोनों अक्सों को देखता रहा फिर एकाएक तिलमिला कर उठा। उसने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढाँप लिया और चेहरा गोद में छिपा लिया। फिर एक हाथ की अँगुलियाँ फैला कर मेरी ओर झाँकते हुये बोला—"मैं अब तक नहीं जानता था कि मैं जमीन पर एक भार मात्र हूँ। विश्वास कीजिये कि अब तक मै नहीं जानता था कि मै इतना कुरूप हूँ, उफ खुदा ! कितनी डरावनी शक्ल है मेरी !" उसने फिर अपना सिर झुका लिया।

"तो फिर क्या हुआ ?" मैंने व्यंगात्मक ढङ्ग से कहा—'आसमान में उड़ने की कोशिश क्यों करते हो, चुपचाप जमीन पर रेंगते रहो, ऐसी शक्ल के साथ अगर दिल तङ्ग और स्वार्थी न हो, तब भी कुछ नहीं गया है, लेकिन तुम्हारा दिल भी ऐसा ही है जैसी तुम्हारी सूरत। तुम कितने तङ्ग दिल हो ?—तुम्हारे दिल मे इतनी भी उदारता नहीं।"

"उदारता !" उसने धीमे स्वर में दोहराया—" उदारता !" और उसी प्रकार सिर झुकाये अपने मुंह को ढाँपे बैठा रहा। इसके बाद कई

दिनों तक न मुझे मजीद दिखाई पड़ा और न किशवर। बार-बार बुलाने पर भी वह हमारे यहाँ न आई, हर बार कोई न कोई बहाना कर देती। खेल-कूद, सैर तस्वीरें, सब प्रोग्राम बन्द हो गये। मै इस एकान्त से तङ्ग आ चला था।

एक उदास सी संध्या को मै झरने के किनारे पत्थरों मे बैठा था। योंही, खब्ती सा, कुछ सोच भी नही रहा था। मेरी दृष्टि घाटी के शून्य में तैर रही थी। मैं खाली-खाली निगाहो से ये रगीन दृश्य देख रहा था। हरियाले कुज, ऊदे-ऊदे पहाडों के लहरिये, आप ही आप उगने वाले फूलों की क्यारियाँ और चमकीली नदियाँ जो विचित्र सी रेखाये खींच रही थी। पतली-पतली झिलमिलाती हुई लकीरे, जो कभी एक दूसरे के पास से गुजर जातीं और कभी एक दूसरे से मिल जाती।

कितनी विस्तृत है यह घाटी, प्रकृति की चीजो में कितना विस्तार होता है, लेकिन इन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं को हम किसी समय कितनी सकीर्ण और सीमित बना डालते हैं। आप ही आप मेरी दृष्टि पहाड की चोटी पर चली गई जहाँ सनोवर का वृक्ष अकेला खडा था। सूर्य अस्त होने वाला था। पीली-पीली नारगी किरणों से आकाश का वह कोना जगमगा रहा था। एकाएक मैंने दो साये चलते हुये देखे। एक छरहरा और सुन्दर साया जिसके पग-पग मे सगीन था, नृत्य था और उसके साथ एक भद्दा सा साया जिसका लगडापन और भी स्पष्ट हो गया था। उस समय वे दोनों एक दूसरे को कितना स्पष्ट कर रहे थे? धीरे-धीरे दोनों साये चोटी के इस ओर उतर आये और सनोवर का वृक्ष अकेला रह गया।

नारगी किरणें धीरे-धीरे गुलाबी होती जा रही थी। मै एकटक चन्द नन्हीं-नन्ही बदलियों को देख रहा था जो बार-बार अपना रग बदल रही थी।

मुझे एक आहट ने चौंका दिया। यह किशवर थी कुछ घबराई हुई सी थी। ऐसा लगता था मानो थकी हुई सी थी।

"क्या हुआ किशवर ?"

उसने कोई उत्तर न दिया और मेरे साथ बैठ गई और अपना सिर मेरे कन्धे पर फेंक दिया। मानो मेरी रक्षा में आ गई हो।

"क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

"वह आज जा रहे हैं ?" उसने चोटी की ओर संकेत करते हुये मद्धिम स्वर में कहा।

"कौन ? मजीद ? कहाँ जा रहा है ?"

उसने मुझे ठहर-ठहर कर बताया। कई दिनों से उसके यहाँ बड़ी गडबडी हो रही थी। इसीलिये वह हमारे यहाँ आई नहीं। मजीद तरह-तरह के बहाने करता था कि वह किसी और लडकी से विवाह करेगा, जो उससे प्रेम करती है। वह यह मँगनी तोडना चाहता था। किशवर के पिता बहुत नाराज हुये और उसे बड़े कड़े शब्द कहे। क्योंकि मजीद का भविष्य किशवर के पिता के हाथ में था और वैसे मँगनी भी बहुत पुरानी थी। लेकिन वह न माना हठ पर अड़ा रहा। अन्त में यह परिणाम हुआ कि मँगनी टूट गई और किशवर के पिता ने उससे कहा कि चले जाओ और फिर कभी सूरत न दिखाना। मजीद आज शाम को वापस जा रहा था।

और वह दूसरी लडकी का प्रेम और विवाह !—मुझे अच्छी तरह पता था कि उसमें कितनी वास्तविकता थी। फिर किशवर बोली—"और उन्होंने दबी जबान से यह भी कहा था कि शायद एक तङ्ग दिल के साथ किशवर खुश न रह सके—ऐसे अभागे के साथ जिसके दिल में इतनी सी उदारता भी नहीं !"

"मगर वह तुम्हारे साथ क्यों आया था ?"

"कहने लगे—चलो मै अपना आखिरी फर्ज भी अदा कर दूँ।"

"फर्ज ?"

"वह मुझे आप तक छोड़ने आये थे लेकिन रास्ते ही मे लौट गये।"

एकाएक मेरी दृष्टि पहाड की चोटी पर जा पड़ी जहाँ सनोवर के पेड़ के साथ एक साया हिल रहा था। सध्या की लाली की झलक में उसकी कालिमा और भी स्पष्ट हो गई थी। न जाने वह इतना डरावना क्यों लग रहा था। उसके कदम लडखडा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो कोई बिछुड़ी हुई व्याकुल आत्मा शान्ति की खोज मे इधर-उधर भटक रही हो और उसे कही भी ठिकाना न मिलता हो।

सध्या की लाली एकदम मद्धिम हो गई। छाया धीरे-धीरे लोप हो गई और सनोवर का वृक्ष अकेला रह गया।

—

२

इस रहस्यमयी दुनिया में कभी—कभी ऐसी आश्चर्य-जनक बातों से सामना होता है कि मनुष्य की बुद्धि दङ्ग रह जाती है।

लोग मुझे कही वेवकूफ न बनाये, इस विचार से मै इस घटना का वर्णन करते हुये डरता था लेकिन जब मेरे सफेद बाल उस भयानक घटना की यादगार मेरे पास मौजूद हैं तब फिर क्यों न मैं उसे जनसाधारण के सामने पेश करके अपने मन का बोझ हलका करूँ!

मेरा नाम मुश्ताक अहमद है और मै मुजफ्फरगढ का निवासी हूँ। मेरे पिता हकीम थे। उनके दो सन्तानें थीं। एक मैं और एक मेरी बड़ी बहिन जकिया।

जकिया मुझसे ६ साल बड़ी थी। मगर बड़ी ही नटखट। उसे जानवर पालने का बहुत शौक था। उसने कई खरगोश और गिलहरी के बच्चे पाल रक्खे थे। हम दोनों भाई बहिन आपस में बहुत प्रेम करते थे। जब में जरा बड़ा हुआ तो उसने अपनी शरारतों में मुझे भी शामिल कर लिया।

समय बीतता गया और उसके साथ ही हम भी बढ़ते गये यहाँ तक कि मैं नौ साल का हो गया और जकिया पन्द्रह साल की। लेकिन उसके नट-खट पन में तनिक भी अन्तर न आया।

हमारा मकान बाजार में था, जिसकी निचली मंजिल में पिता जी का औषधालय था और कोठे पर हम लोग रहा करते थे। कोठे की खिड़कियों के पास बाहर की ओर पिता जी के मतब का बड़ा सा साइन बोर्ड लगा हुआ था। एक बार किसी अभागिनी चिमगादड़ ने उस साइनबोर्ड के पीछे बच्चे दे दिये। और संयोग वश एक दिन ज़किया की नजर उन पर जा पड़ी। बस फिर क्या था, वह उसका बच्चा छीनने को अधीर हो गई। उसने इस काम में मुझे भी शरीक करना चाहा मगर मैंने आज से पहिले वह जानवर कभी न देखा था। इसलिये डर कर इन्कार कर दिया।

मेरे इन्कार पर वह बहुत बिगड़ी और मुझसे रूठ कर दूसरे कमरे में चली गई। फिर भी उसके चंचल स्वभाव मे शान्ति कहाँ। थोडी-देर बाद पिता जी की छड़ी हाथ में लिये हुये फिर आ गई। मै इस डर से कि शायद वह मुझे पीटने आई है भाग कर दूर जा खड़ा हुआ।

गर्मी के दिन थे और दोपहर का तपता हुआ समय। धरती नरक के समान जल रही थी और हर तरफ गर्द उड़ती हुई दिखाई देती थी। वृक्षों के पत्ते लू से झुलस कर मुरझा रहे थे।

जकिया का चेहरा कुछ गर्मी और कुछ गुस्से से लाल भभूका हो रहा था। वह मुंह ही मुँह बड़बड़ाती और मुझे गुस्से से देखती हुई

खिड़की में एक टाँग बाहर की ओर लटका कर बैठ गई और झुक कर छडी से चमगादड़ो को कोचने लगी। चमगादड़ो की आवाज बराबर सुनाई दे रही थी।

वह अपने काम मे व्यस्त रही। यहाँ तक कि वह चमगादड तङ्ग आकर बच्चो को वहीं छोड परों को फडफड़ाती हुई उड़ गई और सामने के मकानों की दीवरों से टक्करे खाती किसी कोने में छिप गई। बच्चे बेचारे बिना माँ के सिसकने लगे। जकिया फौरन चिमटा लाई और दोनों बच्चों को उठा कर छोटे से पिजड़े में डाल लिया।

दिन भर तो वह चमगादड गायब रही मगर शाम होते ही अपने घोंसले में वापस आ गई और बच्चों को वहाँ न पाकर खिड़की के द्वारा कमरे में घुस कर चक्कर काटने लगी। ताक पर पिजड़ा पड़ा था जिसमें उसके बच्चे थे। वह बार बार पिजड़े पर झपटने लगी।

जकिया ने बहुत यत्न किया कि किसी तरह चमगादड़ बाहर निकल जाय लेकिन वह किसी तरह न टली। आखिर एक बार जब पिजडे पर झपटी तो जकिया ने इस जोर से छडी का वार किया कि वह बेदम होकर गिर पडी और जकिया ने छडी की चोटो से उसको मार डाला।

भगवान की इच्छा उसी रोज जकिया को ज्वर आया और ग्यारहवे दिन वह कब्र में सो गई। मुझे उसके मरने का बहुत ही दुःख हुआ और नटखटपन से घृणा हो गई।

(२)

इस घटना को हुये अठारह साल बीत गये। मेरे माता-पिता इस बीच स्वर्ग सिधार चुके थे और अब मैं स्वय हकीम था। अपने काम में मुझे खास दिलचस्पी थी। मैं जड़ी-बूटियों की खोज का बहुत शौकीन था। हमारा पुराना नौकर चिराग इस काम में मेरा सहायक था।

चिराग़ मुझ से दस साल बड़ा था। पिता जी ने उसे अनाथालय से लेकर पाला था और उसे अपने पुत्र की तरह मानते थे। यह आदमी बड़ा स्वामिभक्त था और मुझसे बहुत स्नेह करता था। उस समय मेरी आयु सत्ताईस वर्ष के लगभग थी और चिराग़ की अवस्था सैंतीस वर्ष की थी। मगर हम दोनों अविवाहित थे।

मै और चिराग बहुधा नई बूटियों की खोज में जङ्गलों और वनों में मारे-मारे फिरा करते थे। मैंने कई नई बूटियाँ खोजीं जिनके विचित्र गुणों ने मेरी हकीमी को चार चाँद लगा दिया।

अतएव इसी सिलसिले में मैंने एक बार जम्मू की यात्रा की और तीन-चार महीने तक उसी इलाके में नई-नई बूटियाँ खोजता हुआ बटौत तक जा पहुँचा। चिराग यात्रा में मेरे साथ था और मेरे आराम का बहुत ध्यान रखता था। मेरे पास तीन घोड़े थे जिन में से एक पर मै स्वयं सवार होता और बाकी दोनों पर यात्रा का सामान लादा जाता। चिराग़ एक पहाडी नौकर लच्छू के साथ हमेशा पैदल चला करता था।

लच्छू कस्बा रोहिनी का निवासी था जो रामवन से दो सौ मील पश्चिम की ओर उन पहाड़ो की तरफ था जिन की हिमाच्छादित चोटियाँ ऊँचाई मे आसमान से बातें करती थीं।

यात्रा के बीच में एक दिन जड़ी-बूटियों की चर्चा हो रही थी। लच्छू ने मुझे बताया कि रोहिनी के आसपास एक पौधा मिलता है जिस की जड़ की सुगन्ध से शेर मस्त हो जाता है। पहाडी लोग शेर से बचाव के लिये इस जड़ को अपने पास रखते हैं और इस स्थान से बीस मील पर एक कस्बा बाथरी नाम का है जो मुसलमानों की बस्ती है। इस गांव के आसपास प्रकाश देने वाले वृक्ष पाये जाते हैं। इस वृक्ष को पहाड़ी लोग जून का वृक्ष कहते हैं। इसका प्रकाश सफेद और स्वच्छ होता है। वहाँ के निवासी इस वृक्ष की टहनियाँ काट कर घरों में बत्ती की जगह प्रयोग करते हैं। और वहाँ की गुफाओं में एक विशेष प्रकार

का घास पदा होती है जिसको भिगोया जाय तो उससे धुआँ निकलना शुरू हो जाता है। और आस-पास कई गज तक धुन्ध छा जाती है। इसके अतिरिक्त उसने एक अचम्भे की बात यह बताई कि बाथरी में कोई बाहर का आदमी जाना पसन्द नहीं करता क्योंकि उस गाँव के पास ही भूतो का एक क़स्बा है। यद्यपि उन लोगों ने भूतों की रोक-थाम के लिये बहुत कुछ प्रबन्ध कर रक्खा है लेकिन फिर भी उनको भूत सताते रहते हैं।

लच्छू के द्वारा उस अनोखे गाँव और उसके विचित्र पौधों का हाल सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं दिन भर उसी गाँव के विषय में सोचता रहा और मेरे दिल में वहाँ जाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई।

उस रात मैंने एक विचित्र स्वप्न यह देखा कि मै और चिराग़ एक सुन्दर पहाडी पर खडे हैं जिसके सामने एक चित्ताकर्षक पहाड़ी पर एक गॉव बसा है। इन दोनों पहाडियो के बीच खड्ड में एक क़ल-कल करती हुई नदी फेन उडाती और इठलाती हुई बह रही है। इस खड्ड के ऊपर दो पुल बने हुये हैं। एक साधारण और दूसरा सुन्दर।

साधारण पुल गॉव की ओर जाता है। और सुन्दर पुल एक विशाल भवन के दरवाजे पर जाकर समाप्त होता है जो दूसरी ओर ठीक खड्ड के ऊपर बनाया गया है। उस भवन का आधा भाग जो दमदमे (बुर्ज) की सूरत का है, बड़ी कारीगरी से खड्ड की ओर बढ़ा कर दो पथरीली चट्टानों की चोटियों पर खडा किया गया है। ये चट्टानें, जो इस दमदमे के नीचे खम्भों का काम देती हैं, नदी के उस भाग में स्थित हैं जहाँ पानी बहुत गहरा है और मस्त हाथी की तरह चट्टानों से टक्करें मारता हुआ जा रहा है। इस पुल पर दमदमे के पास मेरी बहिन ज़किया अत्यन्त दुखी खड़ी है। उसकी गोद में एक नन्हा सा बच्चा है।

मुझे देख कर वह गिड़गिड़ा कर कहने लगी—"मुश्ताक मुझे बचाओ।" मैंने दुखी होकर कहा—"ज़किया यह कौन सी जगह है और तुम यहाँ कैसे आ गईं?" उसने कहा—"मैं ज़किया नहीं, मेरा नाम शमशाद है। इस गाँव को बाथरी कहते हैं और मै यहाँ की सताई हुई रानी हूँ।" मै उसकी सहायता को बढ़ा कि एक दम जोरों की आंधी आई। वह पुल टूट गया और जकिया खड्ड में गिर पड़ी लेकिन बचा मैंने पकड़ लिया।

इस भयानक स्वप्न की घबराहट से मेरी आँख खुल गई। मेरे माथे पर पसीना आ रहा था। मैं व्याकुल होकर बिस्तर पर करवटें बदलने लगा, यहाँ तक कि प्रातःकाल चिड़ियाँ चह चहाने लगीं और शीतल वायु के झोंके खेमे के दरवाजे पर खेलने लगे। प्रकाश के आगमन से अन्धकार का लोप होने लगा।

मैंने चिराग को बुला कर जो स्वप्न देखा था वह सब उससे कह सुनाया और तुरन्त बाथरी की ओर कूच करने की आज्ञा दी। थोड़ी देर बाद हम रवाना हो गये। दो बजे के लगभग हम जबी गाँव में पहुँचे और दूसरे दिन वहाँ से विदा होकर बन में पड़ाव डाला।

तीसरे दिन असली यात्रा आरम्भ हुई। यह मार्ग तङ्ग और पेचदार था जो एक खतरनाक खड्ड के किनारे-किनारे होता हुआ पहाड़ की ऊबड़-खाबड़ चढाई पर चला गया था। कुछ घाटियों का रास्ता इतना कठिन था कि घोड़े अपने पाँव ज़मीन में गाड़ २ कर चलते थे। इन पहाड़ो में आना जाना बहुत कम था। यात्रा के बीच में सिर्फ दो बार हमें पहाड़ी लोगों के काफिले मिले जो मन महेश की ओर तीर्थ-यात्रा के लिये जारहे थे या कभी किसी गाँव में से निकलते तो मनुष्य की सूरत दिखाई देती थी। अन्यथा पहाड़ी कौओं और जङ्गली लगूरों का ही दिन-रात साथ रहता था।

अन्त में तेरह दिन के रात-दिन के परिश्रम के उपरान्त हमने यह रास्ता तै कर लिया और रोहिनी गाँव में जा पहुँचे। इस लगातार और कठिन यात्रा की थकावट से हम चूर हो रहे थे इसलिये कुछ दिन रोहिनी में ठहरे रहे।

एक सप्ताह के बाद जब हमने आगे बढ़ने का इरादा किया तो लच्छू कानों पर हाथ रखने लगा लेकिन चिराग ने उसकी पत्नी को कुछ दे दिला कर उसे हमारे साथ जाने पर विवश कर दिया और हम लोग बाथरी की ओर रवाना हो गये।

यह मार्ग पहिले से भी अधिक कठिन और ऊबड़-खाबड़ था। क्योंकि बहुत दिनों से उस तरफ से किसी मनुष्य का गुजरना न हुआ था। बड़ी कठिनाइयों से यह मार्ग समाप्त करके दूसरे दिन दोपहर के समय हम लोग एक खुले मैदान में पहुँचे।

सूर्य्य के प्रकाश से इस मैदान का कण-कण कोहनूर की बराबरी कर रहा था। धूप अपने पूरे यौवन पर थी। शीतल वायु के मतवाले झोंके इस मैदान की बलाएं ले रहे थे।

इस मनोरम दृश्य से प्रभावित होकर हमने वहीं डेरे डाल दिये और खाना जो पहिले पड़ाव से पका कर साथ लाये थे खाकर आराम किया।

तीसरे पहर को मैं और चिराग घूमते हुये सामने के टीले पर चढ़े तो हमें एक स्त्री दिखाई दी जो चीड़ की छाया में बैठी थी। यह एक लम्बे कद की, स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट मगर वृद्धा स्त्री थी। उसके बाल बहुत लम्बे और बिलकुल सफेद थे जिनको खोले हुये वह कन्घी कर रही थी। चिराग झिझक कर कहने लगा—"बचपन की कहानियों में बड़ी बूढ़ियों से सुना करता था कि वीरान पहाड़ों और जङ्गलों में चुड़ैलें रहा करती हैं जिनके बाल पाँव की एड़ियों तक लम्बे होते हैं। कहीं यह उन्हीं में से तो नहीं है!"

मै उसके अन्ध विश्वास पर हँसता हुआ आगे चढा। पॉव की आहट पाकर उसने अपने रुपहले तारों जैसे सफेद बाल चेहरे से हटाये और मेरी ओर देखा। यह स्त्री इतनी बूढी न थी जितनी कि अपने सफेद बालों से मालूम होती थी। वह हमें देख कर बहुत चकित हुई और पहाड़ी भाषा में कहने लगी—"तुम लोग कहाँ के रहने वाले हो और यहाँ कैसे आये हो।"

मैंने कहा—"मै हकीम हूँ और जड़ी-बूटियो की खोज में यहाँ आया हूँ। लेकिन क्या तुम इस वीराने में अकेली रहती हो।

उस स्त्री ने गहरी साँस ली और कहने लगी—'नही! मै बाथरी ग्राम की निवासी हूँ जो यहाँ से तीन कोस आगे है। मेरा नाम फरजाना है। मैं निःसतान हूँ। इसी कारण गाँव की निर्दयी स्त्रियाँ मुझे मनहूस समझती हैं और मेरे पति को मेरे खिलाफ भड़काती हैं। मेरा पति नबी खाँ बहुत कठोर हृदय है। वह मुझ पर अकारण सख्तियाँ करता है। और जरा-जरा सी बात पर मारा पीटा करता है। कभी-कभी उसकी कठोरता से तङ्ग आकर इस जङ्गल में आ जाती हूँ और उसका क्रोध शान्त होने पर वापस चली जाती हूँ।"

उसने मुझे अपनी भुजायें और कन्धे दिखाये जिन पर बड़े-बड़े नीले दाग पड़े हुये थे। यह सब उसके पति के जङ्गलीपन का प्रमाण था। मुझे उस पर बड़ी दया आई। वह मुझे हमदर्द पाकर कहने लगी—"पहिले तो मै उसके इस अत्याचार से बहुत घबराती थी मगर जब से मुझे एक ऋषि ने यह भविष्यवाणी की कि तेरा बेटा एक दिन गाँव का सरदार होगा तब से मै सन्तुष्ट हूँ। यद्यपि मैं जानती हूँ कि मेरी आयु बच्चा पैदा करने की नहीं है फिर भी मुझे विश्वास है ऋषि की भविष्यवाणी अवश्य पूर्ण होगी।"

फरजाना बहुत भली और सभ्य स्त्री थी। मैंने उससे बाथरी के समाचार और भूतों के विषय में पूछा तो उसने मुझे बताया कि 'बेशक

यह कस्बा भूतों के अत्याचारों का निशाना बना हुआ है। इसका कारण वर्तमान सरदार का हद से ज्यादा अत्याचार है जो उसने गाँव के असली उत्तराधिकारी और उसके साथियों पर किया था।'

फिर कहने लगी—"आज से पचास साल पहिले बाथरी ग्राम उन काले-काले ऊँचे पहाड़ों के बीच एक घाटी में बसा था। उस गाँव की आबादी तीन हजार के लगभग थी। उस समय वर्तमान सरदार का चाचा नोमान खाँ गाँव का सरदार था। उस सरदार को शिकार का बहुत शौक था अतएव एक बार जब वह शिकार को जा रहा था तो एक तङ्ग घाटी पर से उसका घोड़ा बिदका और सवार सहित खड्ड में गिर कर मर गया।

'उसके बाद नोमान का छोटा भाई याने वर्तमान सरदार का बाप यहाँ का शासक बनाया गया क्योंकि मृत सरदार का पुत्र हमदान खाँ सिर्फ़ एक साल का बालक था और तेरह साल बाद जब रमजान खाँ की मृत्यु हुई तो उसके लड़के सुलतान खाँ ने, जो हमदान खाँ से पाँच साल बड़ा था, हमदान खाँ को ज़हर देकर मार डाला और स्वय शासक बन बैठा। इस पर हमदान खाँ के हामियों ने विरोध किया तो सुलतान खाँ ने उन लोगों को भी मौत के घाट उतार दिया।

"बस उस दिन से बाथरी ग्राम पर सकट आ गया अर्थात् तमाम निरपराध मारे हुये लोगों की आत्मायें भूत बन कर गाँव वालों को सताने लगीं।

और इन्हीं भूतों के अत्याचारों से तङ्ग आकर सुलतान खाँ एक दर्रे के रास्ते से अपनी प्रजा सहित भाग आया और पहाड़ के इस ओर एक जगह वर्तमान बाथरी ग्राम बसाया और फिर उस पहाड़ी दर्रे को एक पथरीली दीवार बना कर, जो कई गज़ ऊँची है, बन्द कर दिया। अब ये भूत गाँव में तो नहीं आते लेकिन जब कोई आदमी मर जाता है तो लाश को क़ब्र से निकाल कर खा जाते हैं।"

मैंने कहा—"फरज़ाना! बाथरी के निवासी यात्रियों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं?"

फ़रजाना कहने लगी—"भूतों के डर से कोई यात्री अपने-आने का साहस नहीं करता। हाँ, कभी-कभी कश्मीरी सौदागर यहाँ आते हैं और सुन्दर लड़कियाँ सरदार के पास बेच जाते हैं। उनके लिये सरदार ने एक आतिथ्य-गृह बनवा रक्खा है। तुम हकीम हो, अगर अच्छी-अच्छी दवाएँ सरदार को भेंट दोगे तो सरदार तुम्हारी बहुत खातिर करेगा।"

(३)

शाम के करीब हम लोग फरज़ाना के साथ बाथरी की ओर रवाना होकर ऐसी जगह पहुँचे जहाँ स्वप्न का सारा नक़शा मेरी आँखों के सामने फिर गया। हम लोग इस समय एक ऐसी पहाड़ी पर खड़े थे जिसके सामने वही नदी, वही खड्ड, वही दो पुल, वही दमदमानुमा घर, जिसका आधा भाग खड्ड के बीच पथरीली चट्टानों पर स्थित था।

मैं भौचक सा होकर स्वप्न वाली सुन्दर लड़की की खोज में उस सुन्दर पुल की ओर देखने लगा जो उस इमारत के दरवाजे में जाकर समाप्त होता था। मगर वहाँ कुछ न दिखाई दिया। फरज़ाना मेरी बदहवासी पर बहुत चकित थी। मैं बहुत देर तक पागलों की तरह खड़ा इधर-उधर के दृश्य देखता रहा। रात का अन्धकार छा जाने पर हम लोग बाथरी में दाखिल हुये।

हमारे घोड़ों और लच्छू को फरजाना ने अपनी पशुशाला में स्थान दिया। मैं और चिराग़ रात को मस्जिद में सोये। सुबह के वक्त मस्जिद के मौलवी से मुलाकात हुई। मैने अपना पेशा और यहाँ आने का कारण बताया। वह बहुत प्रसन्न हुआ और शुक्रवार के दिन उसने मुझे सरदार से मिलाने का वचन दिया।

उस मौलवी का नाम अब्दुल समद था। गाँव में उसका बहुत सम्मान था। उसका आदर सरदार से दूसरे दर्जे पर होता था।

तीन दिन तक हम लोग मौलवी अब्दुल समद के मेहमान रहे और चौथे दिन जुम्मे की नमाज के बाद उसने सरदार से मेरा परिचय कराया। सरदार, जिसकी आयु वास्तव में पचपन वर्ष की थी, चालीस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट और मजबूत आदमी मालूम होता था। उसका रंग गोरा था मगर चेहरे की आकृति भद्दी थी। उसके चेहरे से अहंकार और अभिमान टपकता था। मेरे दिल में उसकी ओर से घृणा पैदा हो गई। वह मेरे बाथरी आने के सम्बन्ध में बात-चीत करता रहा। मैंने दवाइयों का एक बक्स उसको भेंट के रूप में दिया। इस उपहार से वह इतना प्रसन्न हुआ कि मुझे शाही मेहमानखाने में रहने की आज्ञा दी।

शाही मेहमानखाना वही दमदमें की तरह इमारत थी जो खड्ड के ऊपर बनी हुई थी। सुन्दर पुल उसी मेहमानखाने के दरवाज़े में जाकर समाप्त होता था। बड़े दरवाजे के अन्दर एक खुला सहन था जिसके दो तरफ लम्बे-लम्बे बरामदे थे और पीछे कोठरियाँ बनी हुई थीं। ये कोठरियाँ सख्या में कुल चौबीस थीं। यानी बारह एक बगल में और बारह दूसरी बगल में। दोनों बगलों में छः छः कोठरियों के बीच एक बड़ा कमरा था। ये दोनों कमरे बन्द थे। मेहमानखाने के अन्त पर फिर एक बड़ा दरवाजा था और आगे एक बहुत बड़ा अहाता, जिसके चारों ओर बड़ी बड़ी कोठरियाँ थीं। यह शाही अस्तबल था। इस अहाते में जून के पेड लगे हुये थे जो वास्तव में रात को प्रकाश देते थे।

इस मेहमानखाने की एक कोठरी में लोग रहने लगे। फरजाना अब अपने पति से रूठ कर जङ्गल में न जाती बल्कि मेरे पास आ जाया करती और कई-कई दिन यहीं रहती।

एक दिन मैं अब्दुल समद के घर गया। बात चीत के बीच भूतों की चर्चा चल पड़ी। वह कहने लगा—"भूतों के विषय में तुमने जो बातें सुनी हैं सब सची हैं। इन्हीं भूतों ही के कारण सरदार असली गाँव छोड़ कर यहाँ आ बसा है। लेकिन यहाँ भी क़ब्रिस्तान में रात के समय भूतों का राज्य होता है। और मैंने खुद कई बार इन भूतों को देखा है। ये सब हमदान खाँ के क़त्ल किये हुये साथियों की आत्मायें हैं जो भूत बन गई हैं।"

उसके द्वारा यह भी मालूम हुआ कि सरदार पर इन मार डाले गये लोगों का ऐसा शाप पड़ा है कि वह अब तक निःसन्तान है। उसकी पत्नियाँ चूँकि दूसरे देशों की होती हैं इसलिये वे कुछ दिनों के बाद महल से भाग जाती हैं। दो चार जो उसके पास अब तक मौजूद हैं वे बाँझ हैं।

मैंने कहा—"क्या सरदार इसकी रोक-थाम के लिये कोई इन्तजाम नहीं कर सकता?'

वह कहने लगा—"वह भी हरजाई है। उसके पास लड़कियाँ बेचने वाले नई-नई लड़कियाँ लाते रहते हैं।"

यह सुन कर मैं बहुत ही चकित हुआ। उस गाँव की हर बात अनोखी थी।

(४)

सध्या का उदास समय था। शुष्क वायु पतझड़ के आगमन की सूचना दे रही थी, पतझड़ के कारण वृक्ष बेरौनक़ हो रहे थे। पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ अभिमान से सिर उठाये खड़ी थीं। सुरमई आकाश पर बहुत दूर सफेद बगुलों की क़तारें उड़ रही थीं, घोंसलों में पक्षियों की फड़फड़ाहट और जङ्गली गिद्ध की भयानक आवाज़ एक डरावना दृश्य उपस्थित कर रही थीं। शोर मचाती हुई नदी का पानी

काले साँप की तरह लहराता और पत्थरों को छेदता तेजी से बह रहा था ! मैं परिवर्तन से प्रभावित हो उदासी के साथ कदम उठाता हुआ मेहमानखाने की ओर जा रहा था। इच्छा थी कि सरदार से विदा हो कर वापिस चला जाऊँ क्योंकि जाड़ा बहुत निकट था। मैंने पुल पर कदम रक्खा तो मेरी नजर एक लड़की पर पड़ी जो पुल के अन्तिम सिरे पर खड़ी थी।

मैं जल्दी-जल्दी पुल को पार कर उसके पास पहुँचा तो मेरा दिल धड़कने लगा। यह लड़की बिलकुल जकिया से मिलती-जुलती थी। उसकी आँखों में आँसू भरे हुये थे। एकाएक बड़े दरवाजे से दो आदमी निकले। एक आदमी, जो अपने साथी की अपेक्षा अच्छे कपड़े पहिने हुये था, कहने लगा—"शमशाद तुम यहाँ खड़ी हो और तुम्हें हम लोग मेहमानखाने में तलाश कर रहे हैं, चलो सर्दी बढ़ रही है। यहाँ ठहरना अच्छा नहीं है।

शमशाद के नाम पर मैं दोबारा चौंका और अपने स्वप्न को सत्य समझने लगा। लड़की चुप-चाप घबड़ाई हुई दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई अन्दर चली गई और मैं देर तक हक्का-बक्का वहीं खड़ा रहा।

जब मैं अन्दर गया तो मेहमानखाने में खूब चहल पहल थी। चिराग ने मुझे बताया कि कश्मीरी सौदागर सरदार के पास लड़कियाँ बेचने के लिये आया है। मैं सारी रात सोचता रहा कि किस प्रकार इस लड़की की सहायता की जाय मगर किसी नतीजे पर न पहुँच सका।

दूसरे दिन फरजाना की जबानी मालूम हुआ कि उन लड़कियों में से, जो सौदागर लाया था, सरदार ने केवल तीन लड़कियाँ अपने लिये पसन्द की हैं जिनमें से एक शमशाद है। बाक़ी लड़कियाँ गाँव के लोगों ने खरीद ली हैं। तीसरे दिन सुबह सौदागर चला गया और

सब कोठरियाँ खाली हो गईं। मैं बहुत परेशान था लेकिन मैंने वापिसी का विचार त्याग दिया। क्योंकि उस सच्चे सपने के कारण मुझे विश्वास हो चुका था कि शमशाद को एक न एक दिन अवश्य मेरी सहायता की आवश्यकता होगी।

कुछ दिन बाद कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी और बर्फ गिरनी शुरू हो गई। हर तरफ बर्फ ही बर्फ दिखाई पड़ने लगी। नदी का पानी भी जमकर बर्फ हो गया। मै और चिराग, जो इतनी सर्दी के आदी न थे, दिन रात अन्दर रहने लगे।

किसी तरह वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। वायु में तरावट पैदा होने लगा। ऊँचे पहाड़ सफेद नकाब उतार कर काले देवों का रूप धारण कर रहे थे। बर्फ धीरे-धीरे पिघल रही थी। नदी-नालों की गुनगुनाहट और पक्षियों का कलरव सृष्टि में नये जीवन का पता दे रहे थे।

एक दिन सुबह जब चिराग़ ने दरवाजा खोला तो फरज़ाना सहमी हुई अन्दर आई। वह काँप रही थी। मैंने उसके भयातुर होने का कारण पूछा तो वह कहने लगी—"आज मैंने एक गहरे षड्यन्त्र का पता लगा लिया है जो आप लोगों के खिलाफ रचा जा रहा है।"

मैंने चकित होकर पूछा—"हमारे खिलाफ-षड्यन्त्र ?"

वह कहने लगी—"हाँ, सुनिये। आज रात जब मैं अपनी कोठरी में सो रही थी तो कुछ आहट सुनकर मेरी आँख खुल गई। मैंने देखा कि मेरा पति नबी खाँ बाहर जा रहा है।

"हमारे गाँव में कोई आदमी रात के समय बाहर नहीं निकलता इसलिये उसका रात के समय बाहर जाना एक असाधारण बात थी। मैं न रह सकी और दिल कड़ा करके दबे पाँव उस के पीछे चल पड़ी। वह सीधा सरदार के महल की ओर गया। पिछवाड़े की ओर उसने विशेष प्रकार से दरवाज़ा खटखटाया, जिसके जवाब में एक आदमी ने अन्दर से दरवाज़ा खोला और मेरा पति अन्दर चला गया।

"अन्दर जून की रोशनी हो रही थी। मैंने दरवाजे की दरारों से देखना शुरू किया। दरवाजा खोलने वाला व्यक्ति सरदार सुलतान खाँ था। वह बहुत ही उदास दिखाई देता था। सरदार कह रह था—'दोनों का खात्मा होना चाहिये।' मगर मेरा पति कहता था 'एक ही दिन में दोनों को ठिकाने लगाना लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न कर देगा है, कम से कम दोनों में एक महीने का अन्तर जरूर होना चाहिये।' इस पर सरदार ने कहा—'अच्छा दो-तीन दिन के अन्दर सही, पहिले एक को तो ठिकने लगाओ।' मेरा पति कहने लगा—'यह भी इतनी जल्दी नहीं हो सकता क्योंकि नदी में अभी पानी बहुत थोड़ा है। और पानी कहीं दस पन्द्रह दिन तक जोर पकड़ेगा।' सरदार व्याकुल होकर कहने लगा—"दिन तो बहुत हैं लेकिन खैर लाचारी है। अच्छा, तुम उसे कल को ठीक रक्खो।' मेरे पति ने 'बहुत अच्छा' कहा और सलाम कर के विदा हुआ। मैं उससे पहिले आकर झूठ-मूठ खर्राटे लेने लगी।"

फरज़ाना की बातों से सच्चाई टपकती थी लेकिन मुझे बार-बार यह ख्याल आता था कि हमें ठिकाने लगाने से सरदार का लाभ ही क्या हो सकता है?

इस घटना को लगभग एक सप्ताह हो चुके थे कि जुम्मे की नमाज के बाद सरदार ने मुझे आज्ञा दी कि मेहमानखाने की मरम्मत होने वाली है इस लिये हम लोग मेहमानखाना खाली कर के पुल की दुसरी ओर उस सुन्दर झोपड़े में चले जायें जो इन्हीं दिनों सरदार ने हमारे लिये बनवाया है।

इस आज्ञा से हमारे सन्देहों की और भी पुष्टि हो गई लेकिन विवश हो हमें मेहमान खाना खाली करना पड़ा और हम उस झोपड़े मे चले गये।

हम लोग फरजाना की राय के अनुसार दिन भर तो उसी जगह रहते मगर रात को एक सुरक्षित स्थान पर चले जाते। यह एक झोपड़ी

थी जो गाँव की तरफ एक वीरान जङ्गल मे एक भयानक दर्रे के पास स्थित थी। यह झोपड़ी उसी ऋषि की थी जिसने फरजाना को यह भविष्यवाणी सुनाई थी कि तेरा बेटा एक दिन गाँव का सरदार होगा।

ऋषि को मरे कई वर्ष हो चुके थे मगर झोपड़ी अच्छी दशा मे थी। फरजाना का नित्य कर्म हो गया था कि वह सुबह के समय जाकर झोपड़ी को साफ करती और जहाँ ऋषि बैठा करते थे उस जगह को फूलो से सजाती और फिर दरवाजे में ताला लगा कर वापिस लौट आती। इसी तरह हमें छः दिन बीत गये।

एक दिन सुबह के समय मैंने यह समाचार सुना कि उन लड़कियों में से, जो कश्मीरी सौदागर लाये थे, एक ताज नाम की लडकी सरदार के महल से भाग गई है। सरदार ने उसकी खोज मे विभिन्न रास्तों पर सवार दौडाये लेकिन वह कही न मिली। अन्त मे दूसरे दिन बाथरी से दो कोस के अन्तर पर नदी के बहाव पर पानी में से किसी आदमी को एक गर्भवती स्त्री की लाश मिली जिस की खाल पत्थरों की रगड से उधड़ चुकी थी। पहिचानने पर मालूम हुआ कि यह लाश ताज की थी।

उस लडकी की दर्दनाक मौत पर अचानक मेरे दिमाग मे रोशनी पैदा हुई। मुझे विश्वास हो गया कि वह षड्यन्त्र जो सरदार और नबी खाँ कर रहे थे व्यर्थ हमने अपने से सम्बन्धित समझा। वह षड्-यन्त्र उसकी अभागिनी रानियो के लिये था। क्योंकि नबी खाँ की बातों से स्पष्ट था कि वे किसी को नदी मे फेंक कर मारना चाहते हैं।

मैने फरजाना से अपने विचार प्रगट किये तो वह कहने लगी कि यह कैसे हो सकता है। सरदार की सारी उम्र में सिर्फ दो ही स्त्रियाँ गर्भवती हुई। एक ताज और दूसरी शमशाद। सरदार की सारी आशाये इन्हीं से बँधी थीं ऐसी अवस्था में वह ताज को कैसे नुकसान पहुँचा सकता था।

फ़रज़ाना की जबानी शमशाद के गर्भवती होने का समाचार सुन कर मैं चौंक उठा और मैंने चिल्ला कर कहा—"फरज़ाना अब दूसरी मौत अवश्य ही शमशाद की होगी।"

फरज़ाना कहने लगी—"कारण ?"

मैंने कहा—"कारण यही है कि गर्भवती है। वह दुष्ट हमेशा अपनी अभागिनी पत्नियों को मार डालने के बाद मशहूर कर देता है कि वे भाग गईं। यद्यपि ऐसे कठिन रास्तों से एक स्त्री का अकेले भाग जाना कैसे मुमकिन हो सकता है !"

फरज़ाना कहने लगी—"आगे तो जो स्त्रियाँ गायब होती रहीं वे गर्भवती नहीं थी।"

मैंने कहा—"तुम्हें क्या मालूम ? वह उन्हे शुरू ही मे मार डालता होगा। और अब, चूँकि यह बात जाडे में हुई, जब कि नदी का पानी जमा हुआ था, इसलिये इस काम को जल्दी न कर सका और उनके गर्भवती होने की बात प्रकट हो गयी।"

मेरे समझाने से फरज़ाना भी क़ायल हो गई और उसने वचन दिया कि वह अवश्य शमशाद को बचाने का कोई उपाय करेगी। वह आज कल अपने पति से रूठ कर आई हुई थी और हमारे पास ही रहती थी।

दूसरे दिन सुबह वह तड़के ही बाहर निकल गई और दिन भर गायब रही। रात को जब हम सोने का तैयारी कर रहे थे तो वह वापस आई। वह बहुत प्रसन्न दिखाती थी। ऐसी कि मानो उसने कोई बड़ा काम किया हो। मैंने कहा—"कहो फरज़ाना, दिन भर कहाँ रही ?" उसने कोई जवाब न दिया और अपने लम्बे कुरते की आस्तीन से किसी पौधे के बीज निकाल कर मेरे सामने रख दिये। मैंने पूछा—"यह क्या चीज है ?"

वह कहने लगी—"यह एक प्रकार का जहर है जिसके खाने से आदमी तीन दिन तक मुर्दा रहता है। यह मैं शमशाद के लिये लाई हूँ। इसके द्वारा उसको मुर्दा बनाया जायगा और बाद में उसको भूतों के आने के पहिले कब्र से निकाल कर आप रातों रात भाग सकते हैं।"

मैंने कहा—"सूझ तो बहुत अच्छी है मगर उस पर या उसके बच्चे पर इस विष का कहीं बुरा असर न पड़े।"

फरजाना कहने लगी—"इससे कुछ हानि न होगी। अगर कुछ हुआ तो मैं जिम्मेदार हूँ।"

(३)

दूसरे दिन उन बीजों को पीसकर चूर्ण बनाया गया और एक पुड़िया में बाँध कर फरजाना ने पास रख लिया और कहने लगी कि महल में उसकी एक रिश्तेदार लड़की नौकर है। आज वह उसको अपने साथ मिलने की कोशिश करेगी।

वह महल की ओर चली गई और शाम के बाद जब वापस आई तो घबराई हुई सी थी। आते ही कहने लगी—"वह दवा मैंने शमशाद को पिलवा दी है। यह काम तो हमारी इच्छानुकूल हो जायगा मगर इस काम में जल्दी करके मैंने बड़ी भूल की क्योंकि हमें इससे पहिले उसके लिये कोई सुरक्षित जगह खोजनी चाहिये थी। जिसमें उसको भूतों के आने के पहिले कब्र से निकाल कर ले जाते।"

मैंने कहा—"अभी काफी समय है। अभी जाकर इन्तजाम कर लेंगे।"

फरजाना कहने लगी—"क्या इस वक्त कब्रिस्तान जाने का इरादा है।"

मैंने कहा—"हाँ, इस समय क्या डर है।"

फरज़ाना कहने लगी—'वहाँ तक पहुँचने में बहुत देर हो जायगी और फिर भूतों से बच कर हम वापिस नहीं आ सकेंगे। गाँव में एक स्त्री मर गई है। आज उसकी लाश पर असंख्य भूत जमा होंगे।"

मैं चूँकि भूत प्रेत पर विश्वास न करता था और उन लोगों की बातों को सत्य नहीं समझता था इसलिये मैंने बेपरवाई से कहा—"मैं भी देखूँगा इन भूतों की क्या असलियत है। वास्तव में वे भूत बन्दर की तरह कोई जानवर होंगे जो मेरी बन्दूक के सामने नहीं ठहर सकते"

मैंने बन्दूक कन्धे पर रक्खी और जून की लकड़ी जेब में डाल अकेला चल खड़ा हुआ। मुझे इस तरह जाते देख कर चिराग भी चुपचाप मेरे साथ हो लिया और जब हम लोग गाँव वाले पुल पर पहुँचे तो फरजाना भी हाँफती काँपती हमसे आ मिली। हम लोग चुपचाप गाँव के बाहर मौलवी अब्दुल समद के मकान की ओर जाकर एक घाटी में से होते हुये कब्रस्तान में दाखिल हुये।

चाँद की छटीं तारीख थी। कब्रिस्तान में वृक्षों की इतनी अधिकता थी कि उनकी छाँह से बिलकुल अँधेरा हो रहा था। आसमान पर बादल छाये थे चन्द्रमा कभी-कभी बादलों से झाँकता तो वन के घने वृक्षों की डालियों में से उसका धीमा प्रकाश बहुत ही भयानक दृश्य उपस्थित करता।

कब्रिस्तान के एक कोन में जहाँ वृक्ष अधिक घने नहीं थे एक अहाता बना हुआ था जिसमें एक ओर दो कोठरियाँ थी। फरजाना ने मुझे बताया कि यह शाही कब्रिस्तान है। हम लोग अहाते में दाखिल हुये। कोठरियों को खोल कर देखा गया। एक कोठरी में कब्रें खोदने के औजार और दो लकड़ी के खाली ताबूत रक्खे थे, दूसरी कोठरी में ऐसी चारपाई पड़ी थी जिस पर शव रक्खा जाता है।

यह चारपाई वाली कोठरी हमारे काम के लिये बहुत उपयुक्त थी।

उसे फ़रज़ाना ने साफ किया। और यह निश्चय हुआ कि कल शमशाद को रात भर वहाँ रक्खा जायगा, सुबह के करीब ऋषि की झोपड़ी में ले जॉयगे और तीसरे दिन यानी जब उसे होश आवेगा तो यहाँ से भाग जायगे।

यह निश्चय करने के बाद हम लोग अहाते से निकले। जब हम उस नई कब्र के पास पहुँचे जिसमें आज नई लाश दफन की गई थी। तो फरजाना मेरा हाथ पकड़ कर पीछे की ओर खींचने लगी। मैंने कहा—"यह क्या कर रही हो?"

वह धीरे से कहने लगी—"देखो उस नई कब्र के पास क्या चीज़ है?"

एकाएक बादल फट गये और चन्द्रमा का फीका प्रकाश डालियों से छनकर कब्र पर पड़ा। मैंने देखा कि विचित्र आकृति के आदमी कब्र को पंजों से खोद रहे हैं। शायद उन लोगों ने मेरी आवाज़ सुन ली या चन्द्रमा के प्रकाश में हमें देख लिया। उनमें से एक अपना काम छोड़ कर हमारी ओर बढ़ने लगा।

मैंने एक हाथ में बन्दूक सम्भाली और दूसरे हाथ में जून की लकड़ी पकड़ कर उसे देखा। उफ! मेरे सामने पाँच-छः गज के अन्तर पर एक लाश, जिसकी आँखें ज्योतिहीन और डरावनी थीं, जिसके सिर के बाल खड़े थे, जिसके दाँत हड्डियों की तरह बाहर निकले हुये थे और शरीर लकड़ी की तरह अकड़ा हुआ था, अपने हड्डी के पंजे फैलाये हमारी ओर आ रही थी! मै स्वभावतः कायर नहीं हूँ मगर यह भयानक दृश्य देख कर मेरे होश उड़ गये। जून की लकड़ी मेरे हाथ से गिर गई। ठीक उसी समय फरजाना का हाथ ऊँचा हुआ। उसने कोई चीज़ लाश की ओर ज़ोर से फेंकी। तुरन्त ही हमारे और उसके बीच स्याह धुन्ध छा गई।

फरज़ाना हम दोनो को घसीटती हुई अहाते की ओर ले गई। मुझे कुछ न मालूम था कि क्या हो रहा। हम लोग उसके इशारे पर

अन्धाधुन्ध दौड़ते हुये अहाते मे दाखिल हुये और चारपाई वाली कोठरी में पहुँच कर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। चिराग अर्द्ध-मूर्च्छित सा हो रहा था। मेरी दशा भी बहुत बुरी थी। मगर फ़रज़ाना के हवास बिल्कुल ठीक थे।

सारी रात हमने दम साध कर उस कोठरी मे बिताई। और सुबह की रोशनी होने पर कापते हुये वहाँ से निकले और सहमे हुये उस नई कब्र को देखने के लिये बढे। कब्र बीच से फटी थी। इधर-उधर गीली मिट्टी के ढेर लगे थे और लाश गायब थी। भय के मारे हमारी जबाने पहिले ही गूँगी हो रही थीं। अब कब्र की हालत देख कर हमारे रहे सहे हवास भी गुम हो गये।

कब्र अजगर की तरह मुँह खोले हुये थी और भूतो के पैरों के निशान गीली जमीन पर साफ नजर आते थे। हम लोग लडखडाते हुये कब्रिस्तान से निकल कर घाटी पर चढे और बहुत बुरी हालत मे घर लौट आये। रास्ते मे हमने एक आदमी से सुना कि सरदार की पत्नी शमशाद आज रात को मर गई।

झोपड़ी में आते ही मै और चिराग बेदम होकर गिर पड़े। फरज़ाना भी यद्यपि सहमी हुई थी लेकिन हमारी तरह डरी और घबराई नहीं थी। वह कहवा तैयार करके लाई और मुझे तसल्ली देने लगी। मैंने फरज़ाना से पूछा—"हम लोग रात को उस भूत से कैसे बचे?"

वह कहने लगी—"हमारे देश मे एक प्रकार की घास होती है जिसके भिगोने से धुन्ध छा जाती है। हमारे गाँव के लोग इस घास को हमेशा अपने पास रखते हैं और जब मैं रात को आप के साथ गई तो मेरे पास भी घास मौजूद थी। मैंने आप के दवाइयों के बक्स से एक बोतल लेकर उसमे पानी भर कर साथ रख ली थी।"

मैं रात भर के डर के कारण सो न सका था इसलिये जल्दी ही नींद आ गई और दोपहर ढले आँख खुली। अब मेरी तबीयत ठीक

थी। चिराग भी काफी देर सो चुका था और यह भी ठीक मालूम होता था।

फरजाना ने मक्की की मोटी-मोटी रोटियाँ और घी लाकर हमारे आगे रक्खा। हमने खूब पेट भर कर खाया और रात के काम के लिये तैयार हो गये। फ़रजाना ने पता लगा लिया कि शमशाद को दफना दिया गया है।

(६)

शाम होने को थी। सूर्य्य अस्त होने वाला था। पेड़ो के साये असाधारण लम्बे होकर सूर्य्य की पीली और मुरझाई हुई किरणो मे हिल डुल रहे थे। पहाड देवो की तरह तने खड़े थे। रात के आगमन के साथ ही हमारे उत्साह भी भङ्ग होते जा रहे थे मगर कोई रहस्यमयी शक्ति हमें कब्रिस्तान की ओर खींच रही थी।

जब हम लोग शाही कब्रिस्तान के अहाते मे दाखिल हुये तो सूर्य्य की अन्तिम टिमटिमाती हुई किरण भी गायब हो गई और क्षितिज पर अन्धकार के बादल छा गये। फरजाना कहने लगी—"यह अन्धकार हमारे लिये बहुत लाभदायक है। हमे अभी से काम शुरू कर देना चाहिये जिसमे कि रात के और अधिक अन्धकार से पहिले ही शमशाद को निकाल लिया जाय।"

हम तीनों कुदालें लेकर कब्र खोदने मे लग गये और आध घण्टे में हमने शमशाद को ताबूत से निकाल लिया। फरजाना कहने लगी—"आशा के विपरीत यह काम बहुत जल्दी हो गया है इसलिये मै चाहती हूँ कि शमशाद को इसी समय ऋषि की झोपड़ी में पहुँचा दिया जाय। यह कोठरी अधिक सुरक्षित नहीं। मुमकिन है भूत कोई नया गुल खिलाये।"

फरजाना की राय उचित थी, इसलिये मैंने शमाशाद को कन्धे पर उठा लिया और घाटी को पार करके जङ्गल की ओर बढ़ने लगे। जब मैं थक जाता तो चिराग मेरा बोझ उठा लेता। इसी प्रकार एक घण्टे के अन्दर हम उस झोपड़ी में पहुँच गये।

अभी हम अन्दर दाखिल हुये ही थे कि रिमझिम पानी बरसना शुरू हुआ। हमने दरवाजा एक लोहे के खटके के साथ अन्दर से बन्द कर लिया और शमशाद को घास के बिस्तर पर लिटा दिया। मैं अपने कपड़ों का एक जोडा साथ लाया था। फरजाना ने कफन उतार कर उसे मेरे कपड़े पहिना दिये। हम लोग अपनी सफलता पर प्रसन्न सारी रात जागते रहे। सुबह को फरजाना कहने लगी—"तुम अपने निवास स्थान पर वापिस चले जाओ। मै यहाँ शमशाद के पास रहूँगी। तुम रात को मेरा खाना लेकर आ जाना।"

बादल छँट चुके थे और आसमान साफ था। हम लोग घर की ओर रवाना हुये। फरजाना कुछ दूर तक हमारे साथ आई। हम झोपडी से लगभग तीस गज आये होंगे कि वह एकाएक रुक गई और आश्चर्य्य से धरती की ओर देखने लगी। उस जगह मिट्टी बहुत चिकनी और नर्म थी उस पर बहुत से बेढगे पैरों के निशान थे। मालूम होता था कि वे किसी लाश के पाँव के निशान हैं। हम भयभीत होकर एक दूसरे को देखने लगे। फरजाना कहने लगी—"कफ़न की गंध पाकर अवश्य ही भूत इधर आये हैं मगर वर्षा के कारण झोपड़ी को नहीं देख सके।"

मैंने व्यकुल होकर कहा—"अब क्या किया जाय?"

वह सोच में पड गई और कुछ देर बाद कहने लगी—"उन ऊँचे पहाड़ों में मुझे एक गुफा मालूम है। वह गुफा बहुत बड़ी और सुरक्षित है। उसमे दाखिल होकर अगर उसके छोटे से मुँह पर पत्थर चुन दिये जाँय तो बाहर से कोई उनको हटा नहीं सकता इसलिये आज शमशाद को शाम ही से वहाँ पहुँचा दिया जाय तो बहुत अच्छा होगा।"

मैंने पूछा—"वह गुफा यहाँ से कितनी दूर है ?"

वह कहने लगी—"यहाँ से कोई कोस भर पर होगी। अगर आप चाहें तो अभी चल कर देख सकते हैं।"

मैने कहा—"जरूर।"

वह दौड़ती हुई गई और झोपड़ी का दरवाजा बन्द करके हमारे आगे आगे चल दी। जङ्गल के किनारों पर घूमते हुये हम लोग पहाड़ के आँचल मे पहुँचे। यह जमीन पथरीली थी और रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। मगर हम लोग किसी न किसी तरह उसी गुफा तक जा पहुँचे।

सचमुच यह गुफा अन्दर से बड़ी और साफ़-सुथरी थी। एक ओर पत्थर की बडी-बड़ी सिलें पडी थीं जो गुफा का मुँह बन्द करने के बहुत उपयुक्त थी। गुफा अन्दर से इतनी लम्बी थी कि उसका दूसरा सिरा दिखाई न देता था। मैंने कहा—"फरजाना, यह गुफा कहाँ खतम होती है ?" फरजाना ने अज्ञानता प्रकट की। इसलिये मै और चिराग जून की लकड़ी हाथ मे लिये हुये गुफा का निरीक्षण करने लगे।

लगभग दो फरलॉग चलने के बाद रास्ता इतना नीचा हो गया कि हमे झुक कर चलना पडा। हमारे सामने किसी झरने के गिरने का शब्द सुनाई दिया और हमारे पॉव पिंडुलियो तक पानी में डूब गये। आगे पानी के गहरे होने की आशंका थी, फिर भी हमे इत्मीनान हो गया कि इस तरफ से किसी खतरे की सम्भावना नही। इसलिये हम वापस पलट आये। फरजाना तो शमशाद के पास चली गई और हम दोनों अपनी झोपड़ी मे आ गये।

घर पहुँच कर मैंने स्नान किया और कपड़े बदल कर सरदार के पास झूठे शोक-प्रकाश के लिये गया। दोपहर के समय वहाँ से वापिस आया और खाना खाकर सो गया। चार बजे के करीब जागा और आवश्यक सामान, जो वहाँ लेकर जाना था, इकट्ठा करके मैं और चिराग़

समय की प्रतीक्षा करने लगे। किसी न किसी तरह दिन खतम हुआ। सूर्य्य अस्त होने वाला ही था कि हम लोग उधर की तरफ चल खड़े हुये और संध्या का पहिला सितारा जब आकाश की खिडकी से झाँकने लगा, तो हम झोंपडी तक पहुँच गये।

फरजाना ने खाने-पीने का सब सामान सम्भाला और मैं तथा चिराग़ बारी-बारी शमशाद को कन्धे पर उठाते गुफा की ओर रवाना हुये और फुर्ती से रास्ता तै कर के गुफा तक जा पहुँचे।

गुफा बहुत अँधेरी हो रही थी, जिसको जून की बहुत सी टहनियों से प्रकाशित करना पड़ा। फिर गुफा के मुँह को सिलों से बन्द करके संतोपपूर्वक भोजन किया। इसके बाद यह निश्चय हुआ कि हम तीनों बारी-बारी से रात को जाग कर शमशाद की रक्षा करें। पहिले तीन घण्टे चूँकि चिराग के हिस्से मे पडे थे इसलिये मै और फरजाना निश्चिन्त हो सो रहे।

हमे सोये हुये कोई एक घण्टा हुआ होगा कि अचानक एक भयानक चीत्कार सुनाई पडी। मैं और फरजाना तडप कर उठ बैठे। देखा तो चिराग वेहोश पड़ा था। हमे ख्याल हुआ कि शायद इसे साँप ने काट लिया है। मै उसे देखने के लिये झुका ही था कि फरजाना भी उल्लू की तरह चीखने लगा। मैंने घबरा कर उसकी ओर देखा।

उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी, ओठ सूख रहे थे और काँपती हुई गुफा के भीतरी भाग की ओर इशारा करके वह बेतहाशा चीख रही थी। मैंने जल्दी से पलट कर उस ओर देखा।

आह, भगवान! मेरे सामने ऐसा भयानक दृश्य उपस्थित था कि भय से मुझ पर जैसे बिजली गिर गई। अत्यन्त घबराहट से मेरे हाथ-पाँव सुन्न हो गये और गला सूख कर बन्द हो गया। मैने देखा कि चार-पाँच कंकाल, जिनकी सूरतें बिगड़ी हुई और अति अधिक डरावनी थीं, गुफा के भीतरी भाग से निकल कर हमारी ओर आ रहे थे।

फ़रखाना की चीखे अब बन्द हो चुकी थी। वह अचेत पड़ी थी। मै इसी बदहवासी में उठा। काँपते हुये हाथों से बन्दूक उठाई एक लाश के सिर को लक्ष्य करके गोली दाग दी। गोली ठीक निशाने पर बैठी। उस लाश का आधा सिर उड गया मगर वह पूर्ववत् बढती रही। यहाँ तक कि लाशें करीब आ गई।

बढी हुई निराशा और बेबसी से मेरा दिल बैठ रहा था। मै दीवार के सहारे खड़ा हो गया। मेरी आँखो के सामने अन्धकार छाने लगा। मुझे केवल इतना मालूम हुआ कि किसी ठडी और कड़ी चीज ने मेरी शरीर को स्पर्श किया। इसके बाद क्या हुआ, इसका मुझे होश नहीं रहा।

(७)

जब मेरी आँख खुली तो मै और चिराग एक बड़े हाल में पास-पास एक चटाई पर पड़े थे। चिराग के बाल बिलकुल सफेद हो चुके थे और वह अभी अचेत था। कमरे मे जून का प्रकाश हो रहा था। एक ओर बड़े से गोल वृत्त के रूप मे धीमी-धीमी आग जल रही थी। इस वृत्त के बीच एक पलँग बिछा हुआ था जिस पर एक लड़के की लाश पड़ी हुई थी। यह लाश बिलकुल ताजी मालूम होती थी। लाश के पास ही एक वृद्ध पुरुष जिस के बाल बिलकुल सफेद हो चुके थे, उसकी ओर टकटकी लगाये खड़ा था। उस लाश को देख कर मुझे गुफा वाला दृश्य याँद आ गया। मेरे शरीर में झुरझुरी सी हुई और एक काँपती हुई चीख़ मेरे मुँह से निकल गई।

मेरी आवाज पर वह बूढा पलटा और आग का वृत्त फाँद कर मेरे पास आ खड़ा हुआ। मैने बे सोचे-समझे चिल्ला कर कहा—"ऐ जिन्नों के बादशाह! हम पर दया कर!"

बूढा नर्मी से कहने लगा—"डरो नहीं। मै तुम्हारी ही तरह एक मनुष्य हूँ। तुम बिलकुल सुरक्षित स्थान पर हो।"

इसके बाद उस वृद्ध पुरुष ने दूसरे कमरे से एक प्याला दूध ला कर मुझे दिया जिसके पीने से मेरे शरीर में कुछ शक्ति आ गई और मै उठ कर खम्भे के सहारे बैठ गया। वह बूढा भी मेरे पास बैठ कर कहने लगा—"मियाँ मुश्ताक!"

मैं उसके मुँह से अपना नाम सुन कर सन्नाटे मे आ गया।

मगर वह कहने लगा—"आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। फरजाना की जबानी तुम्हारा नाम और वह सब कथा, जिसके कारण तुम सकट में फँसे, मै सुन चुका हूँ।"

फिर एक ठढी आह भर कर वह बोला—"मै सरदार सुलतान का अभागा चाचा हूँ। मेरा नाम नौमान खाँ है। और यह स्थान बाथरी का प्रचीन गाँव है, जहाँ तुम इस समय बैठे हो। यह बाथरी का गढ है।

"आज से पचास वर्ष पूर्व, जब कि मै यहाँ का शासक था, मुझे शिकार का बेहद शौक था। एक बार शिकार के मौके पर जब मै घोड़े पर सवार एक खड्ड के किनारे पर गुजर रहा था तो एक नौकर ने मुझे धक्का देकर खड्ड में गिरा दिया। कई दिन बाद जब मै होश में आया तो मैने अपने आप को एक साधू की कुटिया मे पाया। कुछ समय तक मै उसी कुटिया में पडा रहा। साधू ने मेरी बहुत सेवा-शुश्रूषा की और उसी को कोशिशों से मेरी जान बच गई।

"जब मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया तो उस साधू के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी जगह आज मेरा छोटा भाई रमजान खाँ मेरे लड़के हमदान खाँ की नाबालगी तक यहाँ का शासक हो गया है और मेरे विषय गाँव में यह मशहूर कर दिया गया है कि नोमान खाँ की आत्मा भूत बन में गई है क्योंकि मेरी लाश न मिलने से रमजान खाँ को मेरी मृत्यु के विषय में सन्देह था।

"मुझे भाई के इस कठोर व्यवहार से अत्यधिक खेद हुआ। मुझे अपने भाई से बहुत प्रेम था लेकिन उसका यह व्यवहार देखकर मेरा दिल टूट गया और मै राज्य का विचार त्याग कर उसी साधू के पास रहने लगा।

"वह साधू एक बहुत बड़ा साधक था। इसके अतिरिक्त वह यूनानी और वैद्यक विद्या में भी निपुण था। उसके साथ रहने से मुझे भी उसकी विद्या सीखने की इच्छा हुई और उसकी शिक्षा से कुछ वर्षों में मैं भी बहुत बड़ा साधक बन गया। मेरी विज्ञापित मौत के तेरह वर्ष बाद मेरा भाई रमजान खॉ की मृत्यु हो गई। उस समय मेरे लड़के हमदान खॉ की आयु १४ वर्ष की थी और रमजान खॉ का लड़का सुलतान खॉ तीस वर्ष का था। यह लड़का अपने बाप से भी ज्यादा निर्दयी सिद्ध हुआ और उसने हमदान खॉ को जहर दे दिया। तथा उस के हामियों को मौत के घाट उतार दिया। इस समाचार से दुनिया मेरी निगाहों में अँधेरी हो गई। मै चाहता तो सुलतान खॉ से इसका बहुत बुरा बदला लेता मगर मैंने उसे नुकसान पहुँचाना पसन्द न किया।

"उन दिनों मैं और साधू लाशों को दोबारा जीवित करने की कोशिश में उन पर प्रयोग किया करते थे। मै अपने लड़के की लाश को भी कब्र से निकाल लाया। अतः यह लाश, जो सामने पलॅग पर पड़ी है उसी लड़के हमदान खॉ की है। और यह चौदह वर्ष की पुरानी लाश मेरे प्रयोग के ही जोर से ताजी मालूम होती है।

"आखिरकार कई वर्ष की कोशिशों के बाद हमें सिर्फ इतनी सफलता हुई कि हम लोग अपनी मानसिक शक्ति के बल से मुर्दा लाशों से काम लेने लगे यानी जिस काम का हम विचार करते थे, लाशें तुरन्त हमारे प्रयोग के जोर से वह काम करने लगती। लेकिन हम चाहते थे कि इन लाशों में असली प्राण डालकर उन्हें जीवित किया जाय।

"इसलिये हमने अपना प्रयोग नियम पूर्वक जारी रक्खा और जब कभी कोई आदमी गाँव में मर जाता तो हम अपनी कल्पना के द्वारा इन लाशों को आज्ञा देते और वे मुर्दे को कब्र से निकाल कर हमारे पास ले आती। आरम्भ में जिन लाशों को हमने मँगवाया उनमें अधिकतर हमदान खाँ के समर्थकों की लाशे थी।

"जब इन लाशों की संख्या बढ गई तो उनके रखने और अपने प्रयोग के लिये हमे किसी विशाल इमारत की जरूरत महसूस हुई, इसलिये हम दोनो ने यह निश्चय किया कि इन लाशों को एक घण्टे के लिये बाथरी के गली-कूचों में खुल्लम-खुल्ला फिरने की आज्ञा दी जाय जिससे लोग डरकर गाँव खाली कर दे।"

"अतएव जब उन लाशों को हमने अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा वहाँ जाने की आज्ञा दी तो वे बेधडक गाँव मे दाख़िल हो गई। जब ग्राम-वासियों ने लाशों को देखा उनके हवास उड गये। कई तो भय से मर गये और कई अपने घरो में छिप गये। सुलतान खाँ इतना भयभीत हुआ कि अपनी प्रजा-सहित गाँव खाली करके भाग गया और दर्रे को एक बहुत ऊँची पथरीली दीवार बना कर बन्द कर दिया। इस प्रकार मैने यह गाँव और गढ उससे जीत लिया।

"जब ये लोग यहाँ से चले गये तो हमे अपने प्रयोग के लिये नई लाशों के हासिल करने मे बहुत कठिनाई होने लगी। लेकिन बहुत जल्दी हमने एक ऐसा मार्ग खोज लिया जो एक सूखी नदी के पृथ्वी मे छिपे हुये झरने के पास से होता हुआ एक विशाल गुफा में खुलता था और नई बाथरी का क़ब्रस्तान भी इस जगह से सिर्फ मील भर के अन्तर पर था। अब हमे अपने काम में बहुत सुविधा होगई। हम लोग इसी गुप्त मार्ग से इन लाशों को कब्रिस्तान मे भेजते जो नई कब्रों से मुर्दे निकाल कर ले आतीं।

"अब यह साधू अरसे से मर चुका है। मेरी ससार में अब केवल यही एक इच्छा है कि मनुष्य के शरीर से निकली हुई आत्माएँ दोबारा

शरीर में दाखिल करने में सफलता प्राप्त करूँ। जिसमें कि अपना जीवन समाप्त होने से पहिले एकबार अपने लड़के को जीवित देख सकूँ। यद्यपि मुझे इस लगातार कोशिश के बावजूद अभी तक सफलता नहीं हुई। मगर पूर्ण आशा है कि एक दिन मैं अपने प्रयत्न में सफल हो जाऊँगा।"

वह जरा रुका। फिर कहने लगा—"परसों ये लाशें ताबूत खोद कर लाईं। ताबूत में केवल शाही खान्दान के लोग रक्खे जाते हैं। इसलिये ताबूत को देख कर मेरा दिल धड़कने लगा।

"लेकिन जब ताबूत का ढकना उठाया तो ताबूत खाली था। मैं सोचने लगा कि लाश कहाँ जा सकती है। मुझे यह समस्या हल करने की इच्छा हुई। इसलिये मैंने लाशों को आज्ञा दी कि इस ताबूत मे सोने वाला जहाँ कहीं हो ले आओ और अगर इस काम मे कोई बाधक हो तो उसे भी पकड़ लाओ। अतएव जब तुम लोग गुफा में छिपे हुये थे तो ये लाशें शमशाद की खोज मे बाथरी जाने के लिये उस गुफा मे गुजरीं और शमशाद के अतिरिक्त तुम लोगों को भी, जो बेहोश थे, उठा लाईं। लेकिन शमशाद ने इन लाशों को नही देखा। और न इन लाशों के विषय मे उसे कुछ मालूम है। वह यही समझती है कि तुम लोग उसे यहाँ लाये हो। मैंने उसको एक ऐसे कमरे में रक्खा है जहाँ ये लाशें नही जा सकती और उसे हर प्रकार का आराम है। वह इस समय होश में है और बहुत कमजोर है।"

अभी ये बाते हो ही रही थी कि चिराग के कराहने की आवाज सुनाई दी। हम दोनों उसकी ओर आकर्षित हुए। वह होश में आ चुका था मगर बेचैनी से सिर को इधर-उधर पटक रहा था। मुझे देख कर वह अत्यन्त भयभीत हुआ। मै हैरान था कि क्या मामला है।

सहसा उसने मेरे सिर की ओर इशारा किया। नौमान खाँ कहने

लगा—"वह तुम्हारे बालों से) जो रात को गुफा वाला भयानक दृश्य देखने से बिल्कुल सफेद हो चुके हैं) डर रहा है।"

मैंने उसे ढाढस दी कि हम लोग सुरक्षित हैं और बताया कि स्वयं उसके बाल भी मेरी तरह सफेद हैं जिसका कारण रात वाला भयानक दृश्य और अत्यधिक भय है। इसके बाद नौमान खाँ से उसका परिचय कराया और नौमान खाँ का सारा किस्सा बतला कर उसे भूतों की वास्तविकता बतलाई।

नौमान खाँ ने हमें अपने किले के कोने में एक बहुत आरामदेह कमरा रहने को दिया। इस कमरे के दरवाजे हमने अन्दर से बन्द कर लिये और निश्चिन्तता से सो गये। तीसरे पहर किसी ने दरवाजा खटखटाया, द्वार खोल कर देखा तो नौमान खाँ खड़ा था। वह हमें शमशाद के पास ले गया।

फरजाना ने उसको हम लोगों के विषय में सब कुछ बता रक्खा था। वह हमें देख कर बहुत प्रसन्न हुई और देर तक धन्यवाद देती रही।

(८)

दूसरे दिन नौमान खाँ ने मुझसे कहा कि तुम लोगो के द्वारा यह सुन कर कि, सुलतान खाँ अपनी गर्भवती पत्नियों को नबी खाँ के द्वारा मरवा डालता है, मैं बहुत चकित हूँ और मेरी इच्छा है कि लाशों को भेजकर नबी खाँ को मगवाऊँ और इन निर्दयतापूर्ण अत्याचारो के विषय में पूछताछ करूँ।

इस घटना के एक सप्ताह बाद नौमान खाँ हमारे पास आया और कहने लगा—"नबी खाँ को मेरी सेविका लाशें गिरफ्तार कर लाई हैं और मैं उसका बयान लेने वाला हूँ। यदि तुम चाहो तो मेरे साथ चल सकते हो।"

मैंने कहा—"क्या वे लाशे भी वहाॅ होंगी ?"

नौमान खाॅ ने कहा—"हाॅ, वे तो हर समय वही रहती हैं। उस दिन सिर्फ तुम्हारी खातिर उनको हटाया गया था।"

हम दोनों उन भयानक लाशों की कल्पना से घबरा गये। नौमान खाॅ हमें सकोच में देख कर कहने लगा—"अगर तुम लोग लाशों से डरते हो तो मै तुम्हें ऐसी जगह बैठा सकता हूॅ जहाॅ से तुम सब कुछ देख सको और उसकी बाते सुन सको।"

वह हमे किले के ऊपर एक बुर्ज में ले गया जिसमें नीचे उतरने के लिये पत्थर की एक तङ्ग सीढी बनी हुई थी। सीढ़ी के द्वारा हम एक गैलरी मे उतर गये। यह छत के साथ मिली हुई जालीदार गैलरी उस बड़े खम्भे के चारों ओर बनाई गई थी जो हाल के बीच में खडा था। नौमान खाॅ चला गया और हम दोनों लकडी की एक बेंच पर बैठ कर नीचे देखने लगे। हाल का कमरा उस समय हमारे पाॅव के नीचे था।

नबी खाॅ उस खम्भे के पास एक चटाई पर पडा था और लाशों की एक पंक्ति सामने वाली दीवार के साथ पीठ लगाये खडी थी। आग का दायरा बराबर जल रहा था। इतने में नोमान खाॅ हाल में दाखिल हुआ। नबी खाॅ को अभी तक बेहोश पाकर उसने कोई दवा उसके मुॅह मे टपकाई जिसके प्रभाव से वह तुरन्त होश मे आगया।

उसने सिर उठा कर चारों ओर देखा और लाशों की कतार को देख कर चिल्लाने लगा। नौमान खाॅ कठोर स्वर में बोला—"इस चीख-पुकार से कोई लाभ नहीं। अगर प्राण-रक्षा चाहते हो तो जो मैं पूछूॅ सच सच बता दो।"

नबी खाॅ हकलाता हुआ बोला—"आप मुझ से क्या पूछना चाहते हैं ?"

नौमान खाँ ने कहा—"मैंने सुना है कि सुलतान खाँ अपनी उन पत्नियों की, जो गर्भवती होती हैं, तुम्हारे द्वारा हत्या करवा डालता है। क्या यह सच है?"

नबी खाँ काँप कर बोला—"हाँ, बिलकुल सच है।"

नौमान खाँ बोला—"तो वह ऐसा अत्याचार क्यों करता है?"

नबी खाँ ने कहा—"उसको किसी ज्योतिषी ने बतलाया था कि तुम्हारे यहाँ एक पुत्र उत्पन्न होगा जिसके जन्म के बाद तुम जल्दी मर जाओगे। इसीलिये सरदार ने खड्ड के ऊपर एक मेहमानखाना बनवा रक्खा है जिस के आमने-सामने दो कमरे हैं। इन दो कमरों के बीच जमीन मे एक और गुप्त कमरा खड्ड की भयानक गहराई पर बनाया गया है। इस गुप्त कमरे में एक विचित्र कल लगी हुई है। इन कमरो मे एक तो वह कमरा है जहाँ हत्या की जाती है और दूसरे मे कल वाले कमरे मे जाने का गुप्त मार्ग है जो एक कमानी दबाने से खुलता है जिस कमरे मे हत्या होती है उसमे एक मसहरी है, यह मसहरी जो पत्थर की मालूम होती है वास्तव में लकड़ी के दो तख्ते मिला कर बनाई गई है। उस पर शेर की सुन्दर खाल इस सफाई से मँढ़ी हुई है कि दोनों हिस्सों का निशान बिलकुल नहीं दिखाई देता। इन दोनो तख्तों के नीचे जजीरें लटक रही हैं। कल का हेंडिल दबाने से वे जजीरें खिच जाती हैं और मसहरी के दोनों तख्ते अलग होकर खड्ड मे लटक जाते हैं। और उस पर सोने वाला खड्ड की अथाह गहराई मे गिर कर मर जाता है।

सरदार जब अपनी किसी पत्नी की हत्या करने का निश्चय करता है तो उसे आधी रात को पुल की सैर के बहाने लेकर महल के पिछले दरवाजे के द्वारा मेहमानखाने मे आ जाता है। यहाँ वह उस लड़की को एक विशेष प्रकार की शराब पिलाता है जिससे वह गहरी निद्रा मे लीन हो जाती है। इसके बाद सरदार उसको मसहरी पर लिटा कर उल्लू की तरह शब्द निकालता है।

"मै जो पहिले उसकी आवाज पर कान लगाये बैठा होता हूँ झट मशीन का हैंडिल दबा कर उस लड़की को खड्ड में गिरा देता हूँ। इस प्रकार वह लड़की मर कर पानी मे बह जाती है और किसी को कानों-कान खबर नही होती।"

ये बाते सुन कर क्रोध से नौमान खाँ का चेहरा लाल हो गया। वह कहने लगा—"खुदा की कसम, मैं सुलतान खाँ को कैद करके इस अत्याचार का अन्त कर दूँगा। यह कदापि शासन के योग्य नहीं।"

अतएव एक दिन नौमान खॉ मेरे पास आया और कहने लगा—"मैंने सुलतान खॉ की गिरफतारी के लिये लाशो को भेजा है। मगर वह अभी तक हाथ नहीं आया क्योंकि नबी खॉ के खो जाने से भय खा कर गॉव वालो ने जगह जगह अलाव लगा रक्खे हैं। ऐसी दशा में इन लाशों के जल जाने का भय है। इसलिये अभी कुछ दिन और ठहरना पड़ेगा।"

(६)

हमें इस वीरान किले मे आये, डेढ़ महीना हो गया। एक दिन सुबह के वक्त फरज़ाना ने, हमें शमशाद के बच्चा पैदा होने का सु-सम्वाद सुनाया। हम तुरन्त बच्चे को देखने गये। नौमान खॉ वहॉ पहिले ही मौजूद था और बच्चे को देख कर प्रसन्न हो रहा था। ऊँचे पर्वतों से झाँकता हुआ सूर्य्य अपनी रंगीन किरणों से उसके चेहरे को और सुन्दर बना रहा था। उजाड़ गॉव के खडरों में चारों ओर आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था। प्रत्येक वस्तु हॅसती हुई मालूम होती थी। और हम सब के हृदय प्रसन्नता से पूर्ण थे।

थोड़ी देर बाद नौमान खॉ चला गया मगर हम दोनों दिन भर वहीं रहे। शमशाद को ज्वर आ गया था। मैं उसका इलाज करता रहा।

सध्या के समय मै फरजाना को जरूरी हिदायते कर चिराग के साथ अपने निवास स्थान की ओर रवाना हुआ ।

जब हम लोग प्रधान द्वार के पास पहुँचे तो लाशो की एक बड़ी कतार दरवाज़े में दाखिल हो रही थी । इनमे से दो लाशों के कन्धों पर एक बड़ा सा बडल था । हम दोनों घबड़ा कर एक तरफ हट गये और वह कतार सीधी हाल वाले कमरे मे चली गई । मैने चिराग से कहा—"चलो गैलरी से जाकर देखे, इस बडल में क्या चीज है ।"

हम गैलरी पर चढ गये । आग का दायरा बराबर जल रहा था । नौमान खॉ अपने लडके की लाश पर अमल करने मे व्यस्त था खम्भे के पास लाशों ने अपना बोझ उतारा और कपड़ो मे लिपटी हुई चीज को खोल दिया । यह सरदार सुल्तान खॉ था जिसको उन लाशो ने चटाई पर डाल दिया और स्वय सब दीवार के साथ लग कर खड़ी हो गई ।

हम इन्तजार मे थे कि देखे चचा और भतीजे की मुलाकात का इन दोनों पर क्या प्रभाव पडता है । लेकिन नौमान खॉ अपने काम मे इतना मग्न था कि उसे इस कार्रवाई की कुछ खबर न हुई । सुलतान खॉ का रग हल्दी सा पीला हो रहा था । वह अभी तक अचेत अवस्था मे था लेकिन कुछ देर बाद जब उसे होश आया तो अँगडाई लेकर खम्भे के सहारे उठ कर बैठ गया । सब से पहिले उसकी दृष्टि अपने चचा पर पड़ी जो अपने लड़के की लाश के पास खड़ा उस पर प्रयोग कर रहा था ।

वह कुछ देर तक उसे गौर से देखता रहा फिर किसी क्षणिक आवेश में घूँसा तान कर आक्रमण करने की इच्छा से उठा । मगर जब उसकी नजर सामने दीवार के साथ खड़ी हुई लाशों पर पड़ी तो लडखडा कर गिर पड़ा; ऑखे पथरा गई और रग, जो पहिले पीला था, नीला होकर मुरझा गया । उसकी पापी आत्मा उसका शरीर त्याग चुकी थी । नौमान

खाँ अब तक इन सब बातों से बेखबर अपने प्रयोग में व्यस्त था।

सहसा लड़के की लाश में जीवन के लक्षण प्रगट होने लगे और वह एकाएक आँखें खोल कर उसे क्रुद्ध नेत्रों से घूरने लगा फिर वह एक दम उठा और भूखे बाघ की तरह उस पर झपटा और अपनी अँगुलियाँ बूढ़े के गले मे गड़ा दीं।

यह दृश्य देख कर तुरन्त एक विचार बिजली की भाँति मेरे मस्तिष्क में कोंध गया। मैंने ऊपर से चिल्ला कर कहा—"आह! यह विजय एक पूर्ण पराजय है। तुम्हारे बेटे के शरीर मे सुल्तान खाँ की आत्मा प्रवेश कर गई है।"

उसने मेरी आवाज सुन ली और फटे-फटे नेत्रों से इधर-उधर देखने लगा। एकाएक सुलतान खाँ की लाश देख कर सारा मामला उसकी समझ में आ गया।

अब वह गला छुड़ाने की असफल चेष्टा छोड़ लाशों के समूह को टकटकी बाँध कर देखने लगा। ये नजरें व्यर्थ न थीं। वह उन को दुश्मन पर टूट पड़ने की आज्ञा दे रहा था। एक दम से लाशें आग का दायरा फाँद कर पिल पड़ीं और उन्होने लड़के की लाश का तिक्का-बोटी उड़ा दिया लेकिन उसकी अँगुलियाँ पूर्ववत बूढ़े के गले में धसी रहीं और वह निर्जीव हो कर जमीन पर गिर गया। नौमान खाँ के मरने से लाशों की शक्ति नष्ट हो गई और वे सूखे तनों की तरह औंधी गिर गईं।

हम इस अचानक घटना से सहम गये। सहसा आग की लपटें भडकीं। अब हमें खतरे का अनुभव हुआ। जब लाशों ने आग का दायरा फाँदा तो उनके कफनों मे आग लग गई जिनके जलने से आग हाल की चटाइयों और दूसरी चीज़ों तक पहुँच गई। सारा कमरा धुँआँधार हो गया। हम बड़ी मुश्किल से वहाँ से जान बचा कर

आगे शमशाद के कमरे की तरफ बढ़े। आग तेजी से फैल रही थी। हम तुरन्त उस ओर दौड़े और उसको वहाँ से निकाल लिया। ।

देखते-देखते आग हर तरफ फैल गई। लपटे आकाश से बाते करने लगीं। हम शमशाद और उसके बच्चे को उठा कर वहाँ से भागे और जून की टहनी की सहायता से उस खोह में दाखिल हुये जिसमें से नदी निकल रही था। जब हम ज़मीन के सोते के निकट गये तो एक ओर हमें एक नीचा और लम्बा सुरगनुमा रास्ता दिखाई दिया।

उस में कमर-कमर तक पानी था। जिसमें हम काफी देर चलते रहे और बड़ी कठिनाई से इस मार्ग को पार करके उस गुफा में पहूँचे। जहाँ से हमें लाशें पकड़ कर ले गई थी।

हम लोग पानी में तर-बतर थे। शमशाद भी, जिसे हमने पानी से बचाने की बहुत चेष्टा की थी, भीग चुकी थी। वह पहिले ही ज्वर से पीड़ित थी, अब भीग जाने से उस पर निमानिया ने भीषण आक्रमण किया। उस समय न कोई दवा मेरे पास थी और न इलाज करने का कोई दूसरा साधन था। उसकी दशा बिगड़ने लगी और रात के अन्तिम भाग मे वह स्वर्ग को सिधार गई।

हमें उसकी मृत्यु पर बहुत दु:ख हुआ। सुबह के समय मैं मौलवी अब्दुल समद के पास गया। वह मुझे देख कर बहुत चकित हुआ। मैंने वे सब घटनायें जो देखी और सुनी थीं उसको बतलाई। संयोग-वश वह शुक्रवार का दिन था। मौलवी अब्दुल समद ने मुझे दिलासा दिया।

जुम्मे की नामज़ के बाद उसने गाँव वालों को, जो अपने सरदार के गुम हो जाने से बहुत परीशान थे, यह कथा कह सुनाई। बच्चा उनके सामने लाया गया। सरदार की मृत्यु से उन लोगों को थोड़ा दुःख तो हुआ पर भूतों के खात्मे की खबर सुन कर और बच्चे को देख कर सब सन्तुष्ट हो गये। तीसरे पहर शमशाद की अन्तिम क्रिया कर दी गई।

बच्चे का नाम शमशाद खाँ रक्खा गया और उसके बड़े होने तक मौलवी अब्दुल समद अस्थायी शासक और बच्चे का संरक्षक नियुक्त हुआ। और फरजाना ऋषि की भविष्यवाणी के अनुसार नन्हे सरदार की माँ बनाई गई।

शमशाद की मौत से मेरा दिल उचाट हो गया था, इसलिये हम लोग जल्दी ही वहाँ से चले आये। अब मुझे उन लोगों के विषय में कुछ मालूम नहीं है। हाँ, मेरे सफेद बाल उस भयानक और दुखद घटना की याद अब भी दिलाते रहते हैं।

२

२ फरवरी—

आधी रात तक तो बेचैनी की हालत में बिस्तर पर करवटें बदलता रहा और इस बीच में अपनी रूठी हुई नींद को मनाने का हर तरह से प्रयत्न किया, किन्तु मालूम होता है, आज सारी रात क्षण भर के लिये भी न सो सकूँगा। इसलिये दूसरे कमरे में आकर पुराना शौक़ पूरा करते हुये डायरी में यह पक्तियाँ घसीट रहा हूँ। डायरी लिखना, जी बहलाने का एक बहुत अच्छा साधन है और मेरे लिये तो विशेष तौर से यह एक नियामत है। मैने बहुधा इस व्यसन से अपनी परेशानियाँ दूर की हैं और अब भी जब मेरी क़लम सफेद काग़ज पर दौड़ रही है, मेरा हृदय पहले की तरह व्याकुल नहीं है।

मुझे कुरसी पर बैठे प्रायः आधा घण्टा हो चुका है और इस जरा सी देर में अम्मी जान दो बार आकर मुझे सो जाने को कह चुकी हैं। किन्तु क्या किया जाय ! नींद आँखों में आती ही नहीं। जब से फ़रहता-

बाद जाने का सुख सम्वाद सुना है, दिल में एक मीठी-मीठी सी बेचैनी है और इस समय मन की सब से बड़ी अभिलाषा यह है कि शेष समय भी जल्द बीत जाय और फ़रहताबाद को रवाना हो जाऊँ।

फ़रहताबाद में रिश्ते के मामू रहते हैं जो एक कालेज में अँग्रेज़ी विभाग के प्रधान हैं। पहिले उनके साथ कोई अधिक जान-पहिचान नहीं थी; लेकिन पिछले जाड़े में जब अब्बा जान ने घर आकर बताया कि आज दोपहर के समय मैंने शेख सईदउल्ला को अलफिन्सटन होटल में जाते हुये देखा है, तो अम्मी जान आग्रह करने लगीं कि तुरन्त जाइये और उन्हें घर ले कर आइये। उसी समय अब्बा जी मुझे साथ में लेकर अलफिन्सटन होटल पहुँचे। मामू जान बड़े तपाक से मिले। दूसरे दिन वह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमारे घर आये। रात के ग्यारह बजे तक बातें होती रहीं और मेरे मन में विश्वास पैदा हो गया कि मामू जी से बढ़ कर शायद ही कोई दिलचस्प आदमी हो। चूँकि वह जिस काम के लिये लाहौर आये थे, वह काम पूरा हो चुका था और दूसरे उन्हें कालेज भी जाना था, इसलिये वह जल्दी चले गये और जाते हुये हमसे प्रतिज्ञा करा ले गये कि हम चन्द दिनों के बाद उनके यहाँ जरूर पहुँचेंगे। किन्तु यह प्रतिज्ञा अनेक कारणों से पूरे एक साल तक पूरी न हो सकी। आज सुबह जब मैं घर पहुँचा, तो अम्मी जान ने कहा—"तुम्हारे मामू जान ने तार भेजा है।"

"क्या लिखा है उसमें; मुझे बुलाया होगा?"

"नहीं, उन्होंने सिर्फ यह पूछा है कि अब तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? तुमने अपने खत में उन्हें लिखा था न कि मैं कुछ अस्वस्थ रहता हूँ।"

"वह ता कहाँ है?"

अम्मी जान मुस्कराने लगीं। इतने में अब्बा जी आ गये। अम्मी ने तार उनके हवाले कर दिया। अब्बा जी तार पढ़ कर कहने लगे—

"भई ! मै तो जा नहीं सकता, दफ्तर में काम बहुत है। चन्द दिन तक इन्तजार कर लो, फिर दोनों चलेंगे।"

लेकिन मेरे लिये इन्तजार से बढ़ कर और कोई चीज़ कष्टदायक नहीं। अब्बा जी मेरी इस आदत से खूब परिचित हैं, इसलिये वे कहने लगे—"मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम भी मेरे साथ इन्तजार करो। तुम कल रवाना हो जाओ। मैं चन्द दिन ठहर कर तुम्हारी अम्मी के साथ वहाँ आ जाऊँगा। तुम सिर्फ़ नौकरी के लिये कोशिश कर रहे हो और कोई काम नहीं है। चन्द दिन वहाँ ठहरना।"

"चन्द दिन, वह क्यों ?"

"चन्द दिन नहीं तो क्या चन्द साल ? तुम बहुत भावुक हो। बात-बात पर रूठ जाते हो। क्या उन लोगों को भी सताने का इरादा है ?" अम्मी जान बोलीं।

मै कुरसी से उठा, किन्तु अब्बा जान बोले—"गुस्सा क्यों हो गये बेटा ! तुम्हारी माँ को झूठ बोलने का अभ्यास सा हो गया है। इसी समय तार भेज दो कि मै चार फरवरी की शाम के चार बजे पहुँच रहा हूँ। वह तुम्हें स्टेशन पर लेने आ जायँगे।"

मैं खुशी-खुशी उठा और मामू जान को तार दे दिया।

मामू जान ने अपने हर खत में लिखा है कि यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी है। कोठी से कुछ दूर एक नदी बहती है और इस शहर का सबसे बड़ा गुण यह है कि यहाँ गर्मी नहीं सताती, मौसम समान रहता है।

मामू के यह शब्द हर समय मेरे शौक की आग को भड़काते रहे हैं। देखिये वहाँ क्या देखने में आता है।

काश ! यह समय जल्द कट जाय।

४ फरवरी—

आज शाम को चार बजे गाड़ी फर्रुखाबाद के स्टेशन पर पहुँच गई। मैं कुली को आवाज़ देने के लिये डिब्बे से नीचे उतर रहा था कि मामू जान आ पहुँचे और आते ही इस तपाक के साथ हाथ मिलाया कि मेरी अँगुलियाँ दर्द करने लगीं। मैं अँगुलियों को दबाने लगा, तो बोले—"बड़े नाज़ुक मालूम होते हो। यह बीमारी नहीं तो और क्या है? और हाँ भई! अपनी मामी से नाराज़ हो क्या जो सलाम तक नहीं किया?"

मैंने सामने देखा, मामू जी से चन्द कदम हट कर एक अधेड़ आयु की महिला स्नेहपूर्ण दृष्टि से मुझे देख रही थीं। मैंने झुक कर सलाम किया और मन ही मन लज्जित होने लगा कि मेरे लिये दोनो स्टेशन पर आगये। खैर असबाब उठा कर स्टेशन से बाहर आये। मामू जी का कार खड़ी थी। हम तीनो उसमें बैठ गये और पन्द्रह मिनट के बाद मामू जान की शानदार कोठी के दरवाजे पर पहुँच गये। मामू और मामी के अतिरिक्त घर में तीन और हस्तियाँ भी दिखाई पड़ीं। एक तो मामी जी की सौतेली विधवा बहिन, एक नौकरानी और एक नौकर। मामी जी उनसे परिचय कराने के लिये बोलीं—"यहाँ एक और हस्ती भी रहती है। जानते हो उसे?"

"शायद बहिन जोहरा—" मैंने कहा।

"शायद क्यों, उसकी एक सहेली की शादी है। मैं भी वहीं थी, किन्तु तुम्हारे आने की खबर सुन कर आ गई। तुम्हारी बहिन कल शाम तक तो नहीं, परसों शाम तक ज़रूर आ जायगी। बड़ी तेज लड़की है। घर ही में पढ़ कर मिडिल पास किया। अगले साल मैट्रिक की परीक्षा देगी। तुम तो बी० ए० कर चुके हो। खुदा तरक्की दे!"

इसके बाद मैंने खाना खाया। एक आध घण्टे आराम किया और फिर कोठी की सैर करने लगा। हर एक कमरा बढ़िया फर्नीचर से सजा हुआ है। मामू जान का ड्राइङ्ग रूम तो विचित्र चीज है। कालीनों पर

ऐसे-ऐसे बेलबूटे बने हैं कि आदमी घण्टों देखा करे। दीवारों पर दुनिया के प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र टँगे हैं। एकदीवार पर चीनी चित्र-कला के नमूने हैं, तो दूसरी दीवार पर भारतीय चित्रकारों के चित्र अपनी शोभा दिखा रहे हैं। दायीं दीवार मृत चित्रकारों के अमर चित्रों से सजी है, तो बाईं दीवार जीवित विशेषज्ञो की आश्चर्यजनक कला से सुसज्जित है।

ड्राइङ्ग रूम के साथ ही एक पुस्तकालय है, जहाँ चारों ओर पुस्तकें दिखाई पड़ती हैं।

जोहरा ने भी अपना ड्राइङ्ग रूम बड़ी खूबसूरती से सजाया था। कमरे की हर चीज से सौन्दर्य और कवित्व टपक रहा था। मेज़ पर मामू जान की मोटी-मोटी किताबे रख छोड़ी थी, इससे शायद यह अभिप्राय था कि देखने वाले पर उसकी विद्वत्ता का प्रभाव पड़े।

मेरे लिये तीन कमरे अलग कर दिये गये हैं। एक तो सोने का कमरा है, दूसरा पढ़ने का और तीसरा स्नान-गृह है।

जिस वक्त से यहाँ आया हूँ, जान पड़ता है कि एक स्वर्ग में आ गया हूँ। खेद इस बात का है कि इतने दिनों मामू जान से सम्बन्ध विच्छेद क्यों रहा।

६ फरवरी—

बाल्यावस्था में जब मैं सुन्दर घाटियों और दूर-दूर के सुन्दर नगरों के जादू भरे किस्से पढता था, तो मेरे दिल की एक विचित्र हालत हो जाती थी। उस समय मेरी यह इच्छा होती थी कि काश, मैं उन फूलों से लदी हुई घाटियों उन सुन्दर नगरों में पहुँच कर जीवन भर सैर करता। मुझे अच्छी तरह याद है कि जिस समय मैंने अलिफ़लैला में सिन्दबाद जहाजी की आश्चर्यचकित कर देने वाली कहानियाँ पढीं, तो मेरा मन इतना व्याकुल हुआ कि घर से निकल कर देर तक मिण्टो

पार्क में टहलता रहा और रात को भी स्वप्न में अजीब-अजीब टापुओं और नगरों की सैर करता रहा। सुन्दर दृश्यों से मुझे स्वभावतः बहुत दिलचस्पी है और आज मामू जान की कोठी के इर्द-गिर्द घूमा, तो विश्वास हो गया कि मेरी इच्छा पूर्ण हो गई। वास्तव में मामू जान की कोठी अत्यन्त सुन्दर स्थान पर बनी है। सौभाग्य से मामू और मामी दोनों को फूलों से बड़ा प्रेम है। उन्होंने कोठी के आगे और पीछे दो अत्यन्त मनोहर वाटिकाएं लगवाई हैं। यहाँ असंख्य गमले और पौधे, रंग-बिरंगे फूल गोद में लिये पंक्तियों में खड़े हैं। पिछली वाटिका से कुछ दूर पर एक छोटी सी नदी धीरे-धीरे बह रही है और एक खेत के पास, जहाँ एक टूटी-फूटी दीवार वातावरण की मनोहरता में खास वृद्धि कर रही है, शाह बलूत आकाश की ओर अपना सिर उठाये एक रहस्यमय ढङ्ग से खड़ा है।

आज इर्द-गिर्द घूमता-घामता उस वृक्ष के नीचे बेंच पर लेटा, तो मन को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ।

मामू और मामी दोनों बड़े प्रेम से पेश आ रहे हैं। मैंने निश्चय कर लिया है कि कम से कम छः महीने यहाँ रहूँगा।

अभी तक ज़ोहरा नहीं आई! आशा है, कल सवेरे आ जायगी। मामी जी ने नौकर को भेजा है। उसके आते ही दिलचस्पी और बढ़ जायगी। मामी कहती हैं, तुम्हारी बहिन बहुत दिलचस्प लड़की है। देखिये कब आती है। बेचैनी के साथ प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

७ फरवरी—

मैं प्रातः देर तक सोने का आदी हूँ, किन्तु आज चूँकि सुबह तड़के ही मामू जान के साथ शिकार पर जाना था, इसलिये नौकर ने मेरी आज्ञा के अनुसार मुझे छः बजे ही जगा दिया। मैंने स्नान किया और कपड़े बदलने के बाद उनके कमरे की ओर जा रहा था कि वे स्वयं मेरी

ओर आते हुये दिखाई दिये। मालूम हुआ, काफी देर तक राह देखने के बाद वे स्वयं मेरी तरफ आ रहे थे। खैर, मै मामू जान और नौकर तीनों कार में बैठ गये और कार हवा से बातें करने लगी। रास्ते में बहुत से सुन्दर दृश्य देखे। कभी तो हमारी आँखों के सामने सुनसान मैदान था, कभी हरे-भरे खेत और बाग़। कभी हमारी कार पहाड़ी रास्ते पर उड़ी जाती थी, तो कभी तङ्ग और निर्जन मार्ग पर। आखिरकार हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। मामू जान ने पहले ही प्रयत्न मे एक हिरन मार लिया। इसके बाद कई घण्टे बीत गये और कुछ भी हाथ न आया। एक बजे के लगभग केवल कुछ मिनटो में तीन हिरन मिल गये। यह सफलता काफी थी। हमने शिकार मोटर में रखा और कोठी की राह ली। कोठी पर पहुँच कर मालूम हुआ कि ज़ोहरा आ गई है। मेरा मन प्रसन्नता से नाच उठा। मैं चट ड्राइङ्ग रूम में गया। यहाँ कोई भी नहीं था। मैं सोफे पर बैठ गया। वहाँ बैठे हुये चन्द मिनट बीते होंगे कि नौकर एक लिफाफा लेकर आया। लिफाफे के ऊपर मेरा नाम लिखा था। मैंने लिफाफे को खोला। उसके अन्दर काग़ज के पुर्जे पर लिखा था—

"चोरों की तरह दूसरों के कमरे में आना अच्छी बात नहीं। इससे कभी कभी हानि होती है।'

इस पक्ति के नीचे लिखा था—"इस कमरे मे बैठ कर पढ़ने वाली।" मैं हँसने लगा।

"इसमें हँसने की क्या बात है भला!" एक मधुर आवाज मेरे कानों में आई। मैंने पलट कर देखा। दरवाजे पर तेरह या चौदह वर्ष की एक अत्यन्त सुन्दर लड़की खड़ी थी।

"अच्छा आप हैं, जोहरा साहिबा!" मैंने पूछा।

"जी और यह मेरा पढने का कमरा है।"

"मेरा यहाँ आना आपको बुरा लगा ?"

"जी हाँ।"

"तो मैं कमरे से निकल जाता हूँ।"

"सभ्यता का यही तक़ाज़ा है।"

वह कुरसी पर बैठ कर रूमाल काढ़ने लगी। मैं चुपचाप उसकी तरफ़ देखने लगा।

"आप जाते क्यों नहीं?" उसने मुस्करा कर पूछा। मैं उठा और दरवाजे तक आया। मैं समझता था, वह बुला लेगी, लेकिन वह बराबर दृष्टि झुकाये अपने काम मे व्यस्त रही। मैं दरवाजे से बाहर निकल आया। राह में मामी जी ने पूछा—"क्यों जोहरा से मिले?"

मैने कहा—"जी हाँ, बड़ी तेज और नटखट लड़की है।" यह कह कर जल्दी-जल्दी डग उठाये और कमरे में आ गया। मामी जी मेरी इस हरकत पर जरूर हैरान होगी और मैं उनकी सुपुत्री की हरकत पर चकित हूँ।

८ फरवरी—

सवेरे जलपान करके मामू जान के ड्राइङ्ग रूम में गया तो देखा, जोहरा भी एक सोफे पर बैठी कोई पुस्तक पढने मे व्यस्त है। मुझे देख कर वह मुस्कराई और उच्च स्वर में पुस्तक पढने लगी। मैंने आलमारी में से बाइरन का एक कविता सग्रह निकाला और शेली की कविता का सग्रह ढूँढने लगा। इतने में फीरोज जोहरा के लिये जलपान लेकर आ गया। जोहरा उसे देखते ही गुस्से से कहने लगी—"चोरों की तरह कमरे में आ जाते हो, यह बात ठीक नहीं और दूसरे की चीजों को हाथ भी नहीं लगाना चाहिये।" यह शब्द नौकर को सबोधित कर मुझे सुनाये जा रहे थे। उसकी निगाहे नौकर पर जमी थी, लेकिन वह मुझे कनखियों से देख रही थी। मैंने दोनों पुस्तकें उसके सोफ़े पर फेक दीं और अपने कमरे में आकर लेट गया। एकाएक

याद आया कि मामू जान ने कल शिकार पर कहा था कि नदी पार एक पुराना मन्दिर है। कभी घूमते-घामते वहाँ भी चले जाना। मैं तुरन्त उठा और उस ओर रवाना हो गया। डेढ़ दो मील जाने के बाद मन्दिर दिखाई पड़ा। सचमुच बहुत विचित्र इमारत है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े हैं। अन्दर जाने के लिये एक छोटा सा दरवाजा है, क्योंकि बड़ा दरवाजा दीवार गिर जाने से ध्वस्त हो गया। काफी देर तक इस खण्डहर की सैर की, फिर कोठी पहुँचा। डेढ़ बज चुका था। मामी जी देखते ही बोलीं—"कहाँ गायब हो गये थे तुम! फ़ीरोज तुम्हे दो बार बुलाने के लिये गया। तुम कहीं भी नहीं थे।"

मैंने बतलाया कि पुराना मन्दिर देखने के लिये चला गया था।

"मन्दिर देखने का इतना शौक था तो खाना खाकर गये होते। सुबह तुमने जोहरा का इम्तिहान लिया था?"

"बहुत योग्य लड़की है।"

"हूँ—खफा हो उससे? कोई शरारत तो नहीं की उसने? वह शुरू शुरू में अपने हर मेहमान से यही व्यवहार करती है, लेकिन बाद में बड़ा आदर करती है।"

"मामी जी! उन्होंने मुझे चोर बना दिया है। कहती है, चोर की तरह दूसरों के कमरे में न आया जाया करो।"

"तो यह ठीक नहीं? चोर की तरह दूसरों के कमरे में आना क्या उचित है?" जोहरा ने झट सामने आकर कहा।

"हुश पगली, अपने भाई जान से ऐसी बातें!"

"वाह अम्मी जान! आपने भी खूब समझाया। मैंने इनकी सेवा में निवेदन किया था कि चोरों की तरह न आया करें, बल्कि शरीफ़ों की तरह।"

"और शरीफ़ किस तरह आया जाया करते हैं ?"

"यह बात तो हर शरीफ़ आदमी जानता है। हमारे भाई नहीं जानते ?"

मामी जी हँसने लगीं।

"ख़ैर, अब सुलह कर लो।"

"मैं तो नहीं करती। यह मेरी चुग़ली खाते हैं और चुगली खाने वाला कौन होता है ?"

यह कह कर वह भाग गई।

"अभी बच्ची है। बाप प्यार से 'मेरी नन्हीं' कहता है। बुरा न मानना।"

"नहीं मामी जी !"

मैं अपने कमरे में चला आया।

अभी अभी नौकर ने बताया है कि अब्बा जान का ख़त शेख साहब के नाम आया है जिसमें लिखा है कि वे चन्द दिन में आ रहे हैं।

११ फरवरी—

मैं सवेरे शाहबलूत के वृक्ष के नीचे टहल रहा था। एकाएक ध्यान आया कि अब्बा जी और अम्मी जान आ गई हैं। यह विचार आते ही मैं चट्टान के पास पहुँचा कि वहाँ से अपनी किताब उठा कर कोठी की तरफ रवाना हो जाऊँ, मगर वहाँ किताब नहीं थी बहुत कुछ इधर-उधर खोजा लेकिन व्यर्थ। इसी परेशानी की हालत में घर पहुँचा। अब्बा जान और अम्मी दोनो बड़ी बेचैनी से मेरी राह देख रहे थे। अम्मी जान मुझे देखते ही बोलीं—"यहाँ आते ही हमें भूल गये ! शायद मामू जान ने तुम पर जादू कर दिया है।"

मैने जवाब दिया—'अम्मी जान, मुझे हर घड़ी आपके आने का ख्याल था और मैं आने का इरादा कर रहा था कि मेरी किताब कहीं गुम हो गई; उसे ढूंढता रहा।

"तो क्या किताब अभी तक नहीं मिली?" जोहरा ने कहा। मैंने इधर-उधर देखा। नटखट लडकी मेरी किताब से अपना चेहरा छिपा रही थी। मैंने उसे आड़े हाथों लिया कि मुझे चोर कहती थी; अब साबित हो गया, खुद ही चोर है। वह ठट्ठा लगा कर अन्दर भाग गई। इसके बाद कई घण्टे बाते होती रही। इस बीच में मामू जान ने कह दिया—"मेरी राय है कि इसे अपने कालेज में प्रोफेसर करा दूँ। तनख्वाह काफी होगी। आसानी से एम० ए० का इम्तिहान पास कर लेगा।"

यह सुन कर मै हर्ष से उछल पड़ा। बचपन से मेरी यह इच्छा थी कि किसी कालेज में प्रोफेसर बनूँ और आज मेरी इस इच्छा के पूर्ण होने की सम्भावना पैदा हो गई।

वास्तव में मै बहुत भाग्यवान हूँ। माता-पिता मिले तो इतने दयालु और प्रेम करने वाले कि आज तक उन्होंने मेरी किसी भी इच्छा को नहीं ठुकराया और मामू मिले, तो पिता से भी अधिक प्रेम करने वाले। मै क्यों न अपने सौभाग्य पर गर्व करूँ?

आज शाम को मैंने जोहरा से सुबह की शरारत का बदला ले लिया। वह गुसलखाने में मुँह हाथ धो रही थी और उसकी रिस्टवाच कुरसी पर पड़ी थी। मैं दबे पाँव गया और उसकी घड़ी उठा कर ले आया। जोहरा को जब घड़ी कहीं भी दिखाई न दी, तो वह बहुत सिटपिटाई। नौकरों को डाँटा, मालिन की बेटी पर झूठा दोष लगाया और खुदा जाने, क्या कुछ किया। मैं बड़ी गम्भीरता से उसके साथ घड़ी खोजता रहा और साथ ही साथ उसे यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि बडी बिल्ली उठा कर ले गई है, क्योंकि मैंने सुना था कि एक बार यही

बिल्ली घड़ी मुँह में डाल कर भाग गई थी। ज़ोहरा बेचारी [illegible] की बेटी को सन्दिग्ध दृष्टि से देख रही है—और इस समय जब यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, वह अपनी माँ के साथ उस अबोध बालिका के चरित्र के विषय में पूछताछ कर रही।

१२ फरवरी—

जब जोहरा ने देखा कि उसका कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ, तो उसने नौकरानी के हाथ मुझे एक पुर्जा भेजा जिसमें लिखा था—

'आदरणीय भैया !'

आप कहते हैं कि मेरी रिस्टवाच बिल्ली उठा कर ले गई है, मगर म अच्छी तरह जानती हूँ कि यह कार्य बिल्ली का नहीं है, बल्कि दो टाँगों वाले बिल्ले का है। कृपा कर तुरन्त मेरी चीज इसी लिफाफे में बन्द करके भेज दें, नहीं तो आप जानते हैं कि मैं स्वभावतः नटखट हूँ और बड़ी आसानी से आपकी नाक मे दम कर सकती हूँ। अच्छा यही है कि लिफाफे मे घड़ी रख कर नौकरानी को दे दें। शायद आपको यह पता नहीं कि आप का एक बहुत मूल्यवान चीज मेरे क़ब्जे में है। मै चाहूँ तो उसे तोड़-मरोड कर खिड़की से नीचे फेक सकती हूँ। मगर यह बात आपके लिये बहुत कष्टप्रद है—है न !

मैं इस वक्त अब्बा जान के ड्राइङ्ग रूम मे बैठी घड़ी का इन्तजार कर रही हूँ।

हाँ, मैं यह भी बता दूँ कि आपकी इस चोरी का जिक्र किसी से भी नहीं करूँगी। आप बिलकुल निश्चिन्त रहें। भला, कौन बहिन अपने प्यारे भाई को बदनाम कर सकती है ? वह ऐसा कर सकती है, फिर भी वह नहीं करेगी—हरगिज नहीं करेगी।

आपकी प्यारी बहिन,

जोहरा !'

मैंने पुर्ज़े की पीठ पर लिख दिया—

'मेरी नटखट बहिन !

आपका पत्र मिल गया। निर्णय करने में आपको बड़ा भ्रम हुआ है। इसमें शक नहीं कि घड़ी एक बिल्ले ने उठाई, लेकिन उसने जल्दी ही उस कीमती चीज़ को प्रमोपहार के रूप में एक बिल्ली की भेंट कर दी। अतः वह घड़ी इस समय एक बिल्ला साहिबा के ही कब्जे में है। विनती चिरौरी करें तो शायद बिल्ली साहिबा का दिल नम्र हो जावे। अब रहा आपकी शरारत का मामला, तो इसके विषय में यह कहना है कि आप खुशी से जो चाहें करें, लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि आप का कमरा मेरे कमरे से कुछ दूर नहीं है और आप दिन में दो-तीन बार अपनी प्यारी सहेलियों के यहाँ भी जाती हैं। चाबियों का गुच्छा भेज रहा हूँ। आपका मन बहलाने के लिये यह अच्छी चीज़ साबित होगी।

आपका भाई,

शहाब।'

मैंने लिफाफे में पत्र के साथ चाबियों का गुच्छा रख कर नौकरानी के हवाले कर दिया। मुझे विश्वास था कि जोहरा अपनी इस अन्तिम चेष्टा को असफल देख कर जरूर आयेगी, खुशामद करेगी। लेकिन शाम तक वह रूठी रही। अम्मी जान ने कई बार पूछा, जोहरा से लड़ पड़े हो ? क्या बात है कि तुम आपस में बोलते नहीं ! मैंने हर बार उन्हें टाल दिया। शाम को मैं घूमने का विचार कर रहा था कि ज़ोहरा आई और आते ही बोली—"भैया किधर चले ? मैं तो आपसे बातें करने आई हूँ।"

मैंने कहा—"आप बातें करना चाहती हैं, तो चन्द मिनटों के लिये मैं यहाँ ठहर सकता हूँ। कहिये क्या आज्ञा है ?"

"आशा-वाशा तो कुछ नहीं। मुझे यह निवेदन करना है, कि मैं हिसाब में बहुत कमजोर हूँ। अगर आप पसन्द करें और आपको समय हो, तो मुझे इस विषय में मदद दिया करें।"

"मुझे भी तो एम० ए० की तैयारी करनी है।"

"फिर क्या हुआ?"

"फिर क्या हुआ! एम० ए० का इम्तिहान देना लोहे के चने चबाना है। खैर, मैं आपकी प्रार्थना को ठुकराता नहीं—आध घण्टे रोज मदद दिया करूँगा।"

"बड़ी मेरहबानी।" यह कहते हुये उसने अपनी कलाई की तरफ देखा और खेद प्रकाश करते हुये बोली—"हाय मेरी घड़ी, खुदा के लिये अब तो दे दीजिये। वक्त देखने के लिये बार-बार अब्बा जान के ड्राइङ्ग रूम में जाना पड़ता है। आज नसीमा के यहाँ दो बजे जाना था, मगर घड़ी न होने की वजह से वहाँ ढाई बजे पहुँची। वह बेचारी आधा घण्टा परेशान रही।"

"यह बिलकुल ठीक है, मगर यह बताइये, क्या आप मुझे इस घर का आदमी नहीं समझतीं? मै दिन भर यही रहा हूँ और आप भी दिन भर यहीं रही हैं, आध घण्टे के लिये भी बाहर नहीं गईं। क्यों है न यही बात!"

वह हँसने लगी—"गोया आप जासूस हैं। खुदा की पनाह! अच्छा अब देखिये न, आप मेरे अच्छे भैया हैं।" मैंने घड़ी जेब से निकाली और उसे दिखा कर कहा—"पहले इस बात का वादा करो कि सब घर वालों से कहोगी कि घड़ी सचमुच बिल्ली ले गई थी।"

"बिल्ली? अच्छा, मगर मैं यह क्यों न कहूँ कि बिल्ला ले गया था। हमारे घर में एक बिल्ला भी आया करता है। वह शायद उसका बाप है या पति? क्या पता?"

मैंने घड़ी अपनी जेब में डाल ली।

"ओ हो ! खुदा के लिये ऐसा न करो। मै माफी माँगती हूँ। आपने जो कुछ कहा है, वही करूँगी।"

मैंने घड़ी जेब से निकाल कर उसे दे दी। अब जो उसने बातें करना शुरू कीं तो एक क्षण भी ठहरने का नाम न लिया। कभी अपनी एक सहेली की कजूसी का ज़िक्र हो रहा है, तो कभी दूसरी सहेली की बेवकूफी की बातें। कभी अपनी अध्यापिका की लम्बी नाक की हँसी उड़ाई जा रही है, तो कभी किसी रिश्तेदार के लम्बे दाँतो की चर्चा। इतनी दिलचस्प लड़की मैंने आज तक नहीं देखी। बात-बात पर चुटकुले—बात-बात पर हँसी।

मे डरता था कि घड़ी लेकर भी यह कोई न कोई शरारत करेगी। अतः यह सम्भावना इस तरह पूरी हुई कि जब वह मेरे कमरे से बाहर निकली, तो उच्च स्वर में कहने लगी—"अम्मी जान घड़ी मिल गई है। एक बिल्ली ले गई थी; दो टाँगो वाला बिल्ला नहीं।"

अब्बा आज रात नौ बजे की गाड़ी से लाहौर रवाना हो जायेंगे। वे चन्द दिन और ठहरते, मगर उन्हें तायी जी के मुक़दमे में गवाही देनी है। अम्मी एक हफ्ता और रहेंगी।

१३ फरवरी—

रात अब्बा को स्टेशन पर छोड़ कर घर पहुँचा, तो शरीर में कुछ हरारत सी हो रही थी और सिर भी थोड़ा भारी था; मै बिस्तर पर लेट गया। ध्यान ज़ोहरा की ओर गया। मेरे मन मे एक मधुर, एक आनन्दमय विचार उत्पन्न हुआ और मैं उस आनन्दमय विचार में इतना खो गया कि मामी जान की ओर जो मेरी तबियत के विषय में पूछ रही थीं, अच्छी तरह आकर्षित न हो सका। सवेरे जागा तो मन बिल्कुल उदास था। मैने जल्दी से स्नान किया और नौकर से यह कह कर कि मेरा नाश्ता भी ज़ोहरा के कमरे में लेआये, वहाँ पहुँचा। ज़ोहरा मेरे

जाने के पहले ही अपनी किसी सहेली के यहाँ चली गई थी । मैं निराश होकर कोच पर लेट गया । फिर सोचा, आखिर इस निराशा का कारण ? जोहरा अपनी सहेली के यहाँ गई । दो-तीन घंटों के बाद आ जायगी । इसमें निराशा की बात ही क्या है ? इस बीच में मुझे महसूस हुआ कि शरीर में हरारत आ गई है । शायद इसका कारण यह है कि घूमने नहीं गया । मैं यह सोच झट छड़ी लेकर कोठी से बाहर निकल आया । नदी के किनारे जोहरा अपनी सहेली के साथ बैठी कुछ खा रही थी । मुझे देखते ही मुँह फेर लिया । मैं उनके पास से होकर पहाड़ी के ऊपर चढ़ गया । आध घंटे के बाद जोहरा आ गई । मैंने पूछा—"मुझे देख कर तुमने मुँह क्यों मोड़ लिया था—मेरी शक्ल नहीं देखना चाहतीं ?" वह कुछ परेशान हो गई—"भैया ! आप कैसी बातें करते हैं ? मैं और आपकी शक्ल से नफरत ? यह तो कयामत तक भी नहीं हो सकता । मुझे तो आपकी शक्ल से—सच कहती हूँ आपकी शक्ल बहुत अच्छी है—आपको मालूम नहीं कभी कभी क्या हो जाता है । जरा सी बात पर रूठ जाते हैं और मुझे मनाना पड़ता है ।"

सचमुच जोहरा जब मुझे जरा भी चिन्तित देखती है तो स्वयं भी चिन्तित हो जाती है—अम्मी जान सच कहती हैं, मैं बहुत भावुक हो गया हूँ । अब निश्चय कर लिया है कि इस भावुकता को कम कर दूँगा—एकदम दूर कर दूँगा । क्या वाहियात, कितनी बेहूदा बात है । छि-छिः । अगर मैं यह समझूँ कि जोहरा को मुझसे प्रेम हो गया है या मुझे जोहरा से प्रेम हो गया है तो इसमें झूठ क्या है !—प्रेम—कितना प्यारा शब्द है, कितना चित्ताकर्षक शब्द है ! प्रेम, जोहरा—जोहरा, प्रेम । मेरे खुदा ! मैं तेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की शक्ति ही नहीं रखता । एक और सुख सम्वाद सुना है, मामू जान कालेज में वाइस प्रिंसपल नियुक्त हो गये हैं और लोगों का विचार है कि वे अधिक से अधिक एक साल तक प्रिंसपल भी हो जायँगे, क्योंकि प्रिंसपल साहब रिटायर्ड हो जायँगे ।

२८ फ़रवरी—

आजकल मेरे जीवन के केवल दो ध्येय हैं। एक तो पुस्तकों का अध्ययन और दूसरे शाहबलूत के नीचे बैठ कर घंटों अपनी जोहरा से बाते करते रहना। मुझे पुस्तके पढ़ने का पहले भी शौक था, मगर विचित्र बात यह है कि जो आनन्द आजकल अध्ययन मे प्राप्त होता है, वह आज तक नहीं हुआ था। प्रेम कहानियाँ तो विशेष रूप से अपना आकर्षण रखती हैं।

कल एक विचित्र घटना घटी। जोहरा ने सुरैया को खाने पर बुलाया, तो रशीदा ने शिकायत की कि 'हमे भूल ही गईं। शाबाश है तुम पर।, इसलिये कल शाम से कुछ देर पहले नौकर को भेज कर रशीदा को बुला लिया। भोजन करने के बाद हम चारों रशीदा जोहरा, मैं और फ़ीरोज घूमने के लिये कोठी से बाहर निकल आये। टहलते-टहलते शाहबलूत के नीचे पहुँचे। रशीदा कुछ देर ठहर कर चली गई। उसके जाने के बाद मैंने अनायास वृक्ष के तने पर अपना नाम पेन्सिल से लिख दिया। जोहरा उसे देख कर बोली—"यह ठीक नहीं यह लो चाकू। इससे नाम खोदो।" मैने चाकू से अपना नाम खोदा तो वह बोली—"मेरा नाम भी! आखिर मैंने क्या कसूर किया है?"

मैंने उसका नाम खोदा। वह एक चतुर आलोचक की भाँति नामों को देखने लगी और मुस्करा कर बोली—"मैंने सुना है, पेड़ के तने पर नाम खोदे जायें तो वे कभी नहीं मिटते। पानी आये, आँधी चले, ओले पड़ें, मगर यह अक्षर नहीं मिटते।"

उस समय उसकी प्यारी-प्यारी आँखों में कुछ ऐसी चमक पैदा हो रही थी, जो संगमरमर की स्वच्छ सतह पर सूर्य्य की किरणों से प्रकट होती है। उसने किसी क्षणिक भाव के अन्तर्गत जेब से रूमाल निकाला और उसे चेहरे पर रख कर परे जा बैठी। उसके रुपहले हाथ पर

उसका चेहरा ऐसा दीख रहा था जैसे काँच के गिलास में गुलाब का फूल पड़ा हो। मै उठ कर उसके निकट जा बैठा। वह तनिक घबड़ा कर बोली—"ओह, बड़ी देर हो गई। चलो घर—वे परेशान होंगे। यह फीरोज भी कितना पागल है। हमे बताया ही नही कि शाम हो चुकी है।"

मै उसकी इस भोलेपन से भरी बात करने पर एकदम हँस पड़ा। कोठी में पहुँचे तो मामू जान बोले—"जल्दी आ जाया करो—यह वीरान जगह है।"

२५ मार्च—

जीवन एक अनवरत रगीन और सुन्दर स्वप्न बन गया है। एक दिलचस्पी से मन भरता नहीं कि एक और दिलचस्पी आ मौजूद होती है। एक मनोरजन समाप्त नही होता कि उसके बजाय दूसरा मनोरंजन मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जोहरा, मेरी जोहरा, मेरी समस्त आशाओ का केन्द्र बन गई है। वह मेरे पास होती है, तो यह रगीन दुनिया और रगीन दिखाई देने लगती है और वह कही चली जाती है, तो यह उल्लासपूर्ण जीवन उसकी सुन्दर कल्पना के झूले में झूलने लगता है। आह! वह समय। कितना प्यारा था, जब मैने यहाँ आने के लिये घर से बाहर कदम रक्खा और वह घड़ी कितनी प्रिय घड़ी थी, जब पहले मेरी दृष्टि जोहरा पर पड़ी। जोहरा मेरे हृदय की रानी, मेरे मन का भेद जान चुकी है। अगर ऐसा नहीं है तो वह बार-बार ऐसा क्यो कहती है कि तुम यहीं रहोगे—तुम्हें यहीं रहने पर विवश किया जायँगा—और विवश क्यों किया जायगा, तुम खुद विवश हो। जब वह यह शब्द अपने मुँह से निकालती है, तो उस समय वह कितनी प्यारी मालूम होती है। जी चाहता है कि वह यह शब्द बार-बार कहे, बार-बार मुस्कराये और बार-बार अपने ओठों से फूल बरसाये। किताबों में पढा करता था कि प्रेम सृष्टि की सब से अमूल्य निधि है, जो

बहुत ही भाग्यवान मनुष्य को प्राप्त हो सकती है। मैं यह पढ कर सोचा करता था कि इसमें कोई वास्तविकता भी है या नहीं। आज मालूम हो गया कि यह वाक्य बिलकुल सत्य है। प्रेम वास्तव मे सृष्टि की सब से अमूल्य निधि है और यह अमूल्य निधि मुझे प्राप्त हो गई है।

मामी जी कहती हैं—"यहाँ आकर तुम्हारे स्वास्थ्य मे बहुत परिवर्त्तन हो गया है। अगर यही हाल रहा तो एक दिन पहलवान बन जाओगे।" मै खुद महसूस करता हूँ कि अब मेरी शारीरिक अवस्था मे एक सुखदायक परिवर्त्तन हो चुका है। लाहौर में तो स्वास्थ्य गिर ही चुका था।

मामू जान ने नहर के पार एक नई कोठी खरीद ली है। आज उस कोठी को देखा है। बडी भव्य और विशाल कोठी है। चारों ओर बाग हैं और हर बाग सुन्दर है। इस समय यह कोठी खाली नहीं है। दो तीन महीने तक किरायेदार चले जायँ, तो हम लोग भी उधर चले जायँगे।

२७ मार्च—

जोहरा से इतना प्रेम हो गया है कि एक क्षण के लिये भी उससे अलग रहने को मन नही चाहता। घूमता हूँ तो उसके साथ, पढता हूँ तो उसके निकट बैठ कर और ताश खेलता हूँ तो उसी के कमरे में बैठ कर। जोहरा के रवैये में भी एक प्रत्यक्ष परिवर्त्तन हो चुका है। सब घर वाले कहते हैं कि पहले या तो सहेलियों के पास चली जाती थी या सहेलियाँ उसके पास आ जाती थी, मगर अब किसी सहेली का पत्र नौकर लेकर आता है, तो कह देती है—"इस समय बहुत व्यस्त हूँ। कल आऊँगी।" उसकी सहेलियाँ उसके इस रवैये पर हैरान हैं—वे शायद सब कुछ समझ चुकी हैं।

सुबह बहुत दूर तक घूमता हुआ चला गया। घर आया तो कुछ हरारत शुरू हो रही थी और अब तक मौजूद है। स्नान करने का

निश्चय कर लिया है। लाहौर में भी जब कभी तबियत उदास होती थी, तो सिर्फ यही इलाज करता था।

३० मार्च—

जब हृदय उल्लासपूर्ण हो, दिमाग में प्रसन्नता की लहरें उठ रही हों और आत्मा पर एक मस्ती सी छाई हो, तो बहुत कुछ लिखने की इच्छा होने पर भी कुछ नहीं लिखा जाता। यही हाल मेरा हो रहा है।

विश्वस्त रूप से पता चला है कि डाक्टर इमर्सन, कालेज का प्रिन्सपल, बीमार हो गया है, इसलिये बहुत जल्द विलायत चला जायगा, उसकी जगह पर मामू जान प्रिन्सपल हो जायेंगे। पहले भी कोई रुकावट नहीं हो सकती थी और अब तो मेरे प्रोफेसर होने की पूरी पूरी सभावना है।

अब्बा जान के पास से पत्र आया है, उसमे लिखा कि मामू जान और मामी की सेवा और आज्ञा-पालन में कोई कसर न उठा रखना। वे तुम्हें वहीं रखना चाहते हैं और हम उनका अनुरोध टाल नही सकते। एक पत्र मामू के पास भी आया है। मै उसे पढ़ नहीं सका। मामी जी कहती हैं कि उस पत्र मे लिखा है कि तुम यहीं रहोगे।

यहाँ रहने की इच्छा भी पूर्ण हो गई। मेरी सब बातें मेरी आशा के अनुसार ही होती हैं। सब से अधिक हर्षप्रद बात यह है कि मेरी प्रेमिका जोहरा मेरे जीवन की सगिनी बना दी जायगी। कल मैं गुसलखाने मे था तो हमारी बूढ़ी मेहरी नौकर से कह रही थी—"बाबू शेख साहब का दामाद बन रहा है। बहुत भाग्यवान है जिसको शेख साहब जैसा ससुर मिल जाय। उसे और क्या चाहिये? जिन्दगी भर मजे लेगा। इतनी जायदाद है, कोठियाँ हैं और सिवाय बेटी के कोई दूसरी औलाद नहीं है।"

इस सुख सम्वाद ने रग-रग मे आनन्द और उल्लास की लहरे दौड़ा दी हैं।

मामू जी के आग्रह पर सुबह उनके कालेज के डाक्टर के यहाँ गया था। कहता था--"बुखार तुम्हारे शरीर में घर कर चुका है। नियमित रूप से इलाज कराना होगा।" नियमित रूप से इलाज ! हुँ ह हूँ ! यह डाक्टर लोग भी अजीब किस्म के आदमी हैं ! जरा सी तकलीफ हुई और इन्होंने फतवा लगा दिया। खुदा बचाये इन लोगों से ! दिन मे दो तीन घण्टे हल्की सी हरारत हो जाती है, तो दूर भी हो जायगी।

सुबह हँसी-हँसी मे जोहरा से कहा—"डाक्टर कहता है, तुम्हारी हालत शोचनीय हो जायगी—जान के लाले पड़ जायँगे।" यह सुन कर वह मुझ से रूठ गई और जब मैंने वादा किया कि भविष्य मे कभी भी ऐसे झूठे शब्द मुँह से नहीं निकालूँगा, तो उसने सुलह कर ली। खुदा न करे, कभी बीमार पड़ गया, तो उसके दिल को कितना दुख होगा—वह कितनी परेशान होगी !

७ अप्रैल—

कल मेरी वर्ष-गाँठ थी। मामू जान ने संसार के प्रसिद्ध लेखकों की किताबों से भरा हुआ बक्स दिया। मामी जी ने सुनहरी रिस्टवाच और मेरी जोहरा ने हाथी-दाँत का एक सुन्दर सन्दूक। वर्ष-गाँठ से एक हफ्ता पहले ही वह कह रही थी—"भय्या ! तुम्हारी वर्ष-गाँठ पर ऐसी चीज दूँगी कि जिन्दगी भर याद रक्खोगे। यह चीज मैंने खास तौर से तुम्हारे लिये मँगवाई है।"

सन्दूक मे ताला बन्द था; उसके साथ चाभी भी लटक रही थी। मैंने उसे खोलना चाहा, तो वह कहने लगी—"नहीं भाई जान ! यह नही होगा। अपने कमरे में जाकर खोलना।" मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया; मै वहीं उसे खोलने लगा। जोहरा बड़बडाती हुई चली गई।

बक्स में से कोई चीज रेशमी रूमालों मे लिपटी हुई मिली। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, यहाँ तक कि पाँच रूमाल उतारे। पाँचवाँ रूमाल खोला, तो एक चीनी की मेम सामने आ गई। सब हँसने लगे। चन्द दिन बाद उसकी वर्ष-गाँठ है। बदला ले लूँगा।

शाम को खाने-पर बहुत तकल्लुफ था। न जाने कौन सी बदपरहेजी कर दी कि अभी तक बुखार है।

१६ अप्रैल—

चार दिन से बीमार हूँ। अजीब किस्म की बीमारी है। कभी तो यह अनुभव होता है कि लम्बा सफर करने के बाद थक गया हूँ और कभी महसूस होता है, मानो शरीर मे सुइयाँ सी चुभ रही हैं। विचित्र स्थिति है।

ज़ोहरा हर वक्त पास बैठी रहती है। मेरा मन बिस्तर पर लेटे-लेटे बहुत ऊबता गया है। यह क्या मुसीबत है। कब तक पलँग पर पडा रहूँ? मुझे दवाइयों से नफरत है और मामू जान सुबह-शाम डाक्टर के यहाँ जाने की ताकीद करते हैं।

चन्द दिन के लिये मामू जान एबटाबाद जा रहे हैं। कहते हैं, तुम भी साथ चलना। जलवायु का परिवर्त्तन स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। खुदा करे मुझे यहाँ रहने का कोई न कोई बहाना मिल जाय। जोहरा से बिछुड़ना—बडी कठिन समस्या है।

२७ अप्रैल—

एबटाबाद में आ गया हूँ। जलवायु के परिवर्त्तन ने बहुत अच्छा असर डाला है। मामू जान पन्द्रह दिन यहाँ रहेंगे और मुझे ठहरना होगा। अभी सिर्फ दो दिन बीते हैं।

२८ अप्रैल—

रात करीब दस बजे तक अपने मेजबान के लडकों के साथ ताश खेलता रहा, इसलिये सुबह दस बजे आँख खुली। सिर में दर्द की

लहरे उठ रही थी। मन बहुत उदास था। मैं जाग कर भी बिस्तर पर लेटा रहा। इतने में पास की कोठी सी ग्रामोफोन के रिकार्ड की आवाज आई—

"पिया बिन नही आवत चैन।"

ऐसा लगा मानों मेरी प्रेयसी की कोमल, शीतल अँगुलियाँ हृदय को स्पर्श कर रही हैं। जोहरा का मुस्कराता हुआ, दमकता हुआ सुन्दर चेहरा आखों के सामने फिरने लगा। तुरन्त हो सारी सुस्ती, सारी बेचैनी दूर हो गई। रिकार्ड खत्म होते ही मैं कोठी से निकल कर चलने लगा। जब चित्त प्रसन्न हो, हृदय मे अपनी प्रेयसी की स्मृति मचल रही हो और जलवायु भी आनन्द वर्द्धक हो, तो मनुष्य यही चाहता है कि बस चलता जाये। बिना किसी मतलब के, बिना किसी इच्छा के पैर उठाता चला जाये—कहीं भी न रुके, किसी जगह भी न ठहरे। मै नीले नीले पहाड़ो के आँचलों मे से होता हुआ बहुत दूर चला गया। वापसी पर फिर हरारत होने लगी और अब सीने में भी हलका हलका दर्द हो रहा है। मामू जान को इस बात का पता नहीं कि मेरा मन कितना उदास है। वे नये-नये प्रबन्ध कर रहे हैं। फल मँगवाते हैं, सैर कराते हैं, नई-नई तफरीहो मे हिस्सा लेने के लिये कहते हैं और मेरा मन है कि किसी वक्त भी चैन नहीं लेता।

मामू जान को कौन समझाये कि आप ये एहसान न करे? सब से बड़ा उपकार यह है कि जोहरा के पास भेजवा दे। लेकिन कौन कहे?

३० अप्रैल—

जोहरा की ओर से एक लम्बा पत्र मिला है। पत्र की हर पक्ति से व्याकुलता-पूर्ण प्रेम टपक रहा है। कहती है, मैं बहुत उदास हो गई हूँ, फिर भी खुश हूँ कि तुम जब आओगे, तो बहुत तन्दुरुस्त होगे।

कल मैने सरसरी तौर पर मामू जान से कहा—"मेरी तबियत उदास हो गई है।" पर उन्होंने मेरी बात की तरफ बिलकुल ध्यान न दिया। उन्हें कभी भूल कर भी ख्याल नही हो सकता कि इतनी दिलचस्पियों के होते हुये और इतने सुन्दर तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक जलवायु के होते हुये भी मेरा मन घबरा सकता है।

रात ताश खेलते समय एक बहुत बुरी हरकत कर बैठा। चित्त बहुत उदास था और जब मै बाजी हार गया और शाहेद ने छेड़ना शुरू किया, तो मैंने दो तीन कटु वचन कह दिये। बेचारा बडा लज्जित हुआ। मामू जान भी कहते हैं कि न जाने कभी-कभी तुम्हारी बातों में कटुता क्यों आ जाती है।

मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि ऐसा हो जाता है—शाम को नौकर को बिना किसी कारण के झिड़क दिया।

३ मई—

जोहरा मेरे हृदय, मेरे मस्तिष्क, मेरी आत्मा पर इस तरह छा चुकी है कि दिन मे कोई क्षण ऐसा नही जाता जब उसका हँसता हुआ और खिला हुआ चेहरा मेरी निगाहों के सामने मौजूद न हो।

जोहरा!

यह मधुर, प्रिय और मनोहर नाम लेते ही न जाने क्या हो जाता है। इस अवस्था का वर्णन दुनिया का कोई लेखक अपनी लेखनी द्वारा कर सकता है?

४ मई—

मेरी प्रेमिका इस समय मुझसे दूर, एक सुन्दर कमरे मे सोफे पर बैठी है। कुछ सोच रही होगी। उसकी आँखे चमकदार और ओठ कम्पित होंगे। मैंने अपने पत्र मे उसे हृदय की रानी लिख कर सम्बोधित किया है। कहीं खफा न हो जाय। ओह! मेरे मन में कितनी

बदगुमानी मौजूद है। वह क्यों खफा होने लगी? वह तो सच्चे अर्थों मे हृदय की रानी—आशाओं का केन्द्र है; सृष्टि की निधि है।

पत्र मे लिखती है—"मै हर वक्त चिन्तित रहती हूँ। खुदा के लिये बीमारी के इतने नाज न उठाया करो।" कितना सुन्दर वाक्य है। आह, मै क्या करूँ! हरारत प्रति दिन चार बजे शरीर पर अधिकार कर लेती है। अब तक दवा की कई बोतले खाली कर चुका हूँ, मगर बुखार जाने का नाम ही नही लेता। कल या परसों यहाँ से रवाना हो जायँगे। मामूजान को आखिर मेरे आग्रह के सामने झुकना ही पड़ा!

७ मई—

प्रेम भी कितनी अजीब नियामत है! एबटाबाद वास्तव मे स्वर्ग के समान है। मगर इस स्वर्ग मे मेरा दिल एक दिन के लिये भी न बदल सका और अब यहाँ आया हूँ, तो न शरीर मे हरारत बाकी है न सीने में दर्द और न बदन टूटने की शिकायत। यह सब कुछ प्रेम का करिस्मा नहीं तो और क्या है?

आज दिन का अधिकाश अपने ड्राइङ्ग रूम में फरनीचर वगैरह रखवाने में बीत गया। जोहरा ने इस काम मे बड़ी दिलचस्पी ली। सचमुच उसकी रुचि हर दृष्टि से बहुत ऊँची है। हर चीज कमरे में इस ढङ्ग से रखवाई है कि मालूम होता है, यह जगह सिर्फ इसी चीज के लिये उपयुक्त थी। इस काम से छुट्टी पाकर मैं थक कर सोफे पर बैठ गया और अपना सिर ज़ोहरा की गोद में दे दिया। वह अपने कोमल हाथ मेरे गालों पर फेरने लगी। उस समय ऐसा लगता था, मानों हम इस दुनिया से निकल कर गीतों की दुनिया में पहुँच गये हैं, जहाँ हर तरफ़ सुगधित वायु के झोंके बह रहे हैं। मुझे मालूम नहीं, मैंने कब अपने हाथ उसके गले में डाले, किस समय अपने ओठ उसके ओठों के निकट ले गया। मुझे कुछ भी खबर नहीं थी

कि मैं क्या कर रहा हूँ। एकाएक जोहरा का चेहरा लाल हो गया। उसने अपना हाथ अपने ओठों पर फेरा और जल्दी से उठ कर दरवाजे के निकट जा खड़ी हुई। मुझे उस समय उसका चेहरा अत्यन्त सुन्दर अत्यन्त मनोहर दिखाई दे रहा था। जी चाहता था, उसे अपने हृदय में रख लूँ। उसके ओठों से इस तरह ओठ मिलाऊँ कि दोनों एक दूसरे में समा जायँ। मैं उठा। वह मेरा इरादा भाँप गई—मुस्करा कर भागी। मै भी उसके पीछे भागने लगा। रसोई-घर से गुजरते वक्त उसका दुपट्टा एक कील से उलझ गया। उसने जल्दी से दुपट्टा उतार दिया और फिर भागने लगी। ड्राइङ्ग रूम में पहुँच कर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसके गाल और लाल हो गये। वह कहने लगी—"अरे, यह क्या करते हो? छोडो भी। अम्मी दूसरे कमरे मे हैं।" मगर मै जानता था कि वे गुसलखाने में थीं। मैंने उसे अपने बाहु-पाश में जकड़ लिया और फिर उसके गालों को, आँखों को, बालों को बेताबी से कई बार चूम लिया।

९ मई

रात से फिर ज्वर आ गया है। मन बहुत उदास है। सुबह डाक्टर के यहाँ गया। वह काफी देर तक स्टेथस्कोप से सीने को जाँचता रहा। फिर कहने लगा—"तुम्हारी बीमारी खतरनाक है, इसलिये तुम्हें नियमित रूप से अपना इलाज कराना चाहिये। अगर तुमने ऐसा न किया, तो खतरे के बढ जाने की आशका है।"

कुछ समझ मे नहीं आता, यह बीमारी आ कहाँ से गई। डाक्टर कहता है, तुम्हे नित्य सन्ध्या समय ज्वर आ जाता है। मगर मै कहता हूँ, कभी-कभी हरारत हो जाती है। शायद डाक्टर ठीक कहता है। दिलचस्पियों के समूह में इस ओर ध्यान दे ही नही सकता।

जोहरा के मामा के यहाँ बच्चा पैदा हुआ है, इसलिये माँ-बेटी उधर चली गई हैं। मैं इस विशाल कोठी में अकेला हूँ। आज पहली बार

अनुभव हुआ है कि मै बीमार रहता हूँ। सीने में दर्द है, खाँसी आती है और यह सब चीजें खतरे की घोषणा कर रही हैं।

न जाने मेरी जोहरा कब आयगी।

१२ मई—

मामी जी और जोहरा को आज आ जाना चाहिये था, मगर वे नहीं आईं। उन्हे क्या मालूम कि मेरा क्या हाल है। माता-पिता निश्चिन्त हैं कि बेटा बिल्कुल स्वस्थ है। मामू मामी और जोहरा समझती है कि मौसमी बुखार है, जाता रहेगा; तबियत ठीक हो जायगी। और डाक्टर—वह क्रूर मनुष्य, सुबह शाम—दिन में दो बार, आने वाले खतरे की भविष्य वाणी करता फिरता है। और मै—मेरी दृष्टि मे यह बीमारी एक तुच्छ चीज है; विरह के कष्ट के अतिरिक्त कुछ भी नही। जैसे ही मेरी जोहरा मेरे सामने आ जाती है, मेरी बीमारी स्वप्न समान हो जाती है। जब यह हाल है, तो उन कडवी-कसैली दवाइयो को पीने की आवश्यकता?

१३ मई—

शायद जोहरा आज भी नहीं आवेगी। उसे आने की जरूरत ही क्या है? बीमार मै हूँ, वो तो नही है। उसे अपने मामा के यहाँ असख्य दिलचस्पियाँ प्राप्त हैं। उसे अपने रोगग्रस्त प्रेमी की क्या परवाह?

तबियत हर घड़ी सुस्त रहती है। खाँसी मे भी उन्नति हो गई है।

मामू जी के साथ तय हो चुका है कि गरमी के दो महीने कश्मीर मे बितायेंगे—जोहरा भी साथ होगी। उस स्वर्ग समान पहाडी मे खूब आनन्द रहेगा।

२१ मई—

मामी जी और जोहरा को आये हुये कई दिन हो चुके हैं। इस

बीच में दवाइयों के नियमित प्रयोग से बुखार हलका जरूर हो गया है, मगर अभी तक टूटा नहीं है। घूम कर वापस आऊँ या बाग में टहलूँ, ऐसा अनुभव होता है, मानो अभी-अभी एक लम्बा सफर तय करके आया हूँ। खाँसी ने नाक में दम कर दिया है। शुरू होती है तो रुकने का नाम ही नहीं लेती। घूमने-फिरने में मेरे लिये बहुत दिल्चस्पी है। लेकिन जब थोड़ा चलने पर थक जाऊँ, उस समय घूमने मे खाक आनन्द प्राप्त हो सकता है जोहरा आज कल बहुत चिन्तित नजर आती है। बेचारी घण्टों मेरे पास बैठी रहती है। जैसे ही दवाई पीने का समय आता है, खुद गिलास में दवाई उँडेल कर पिलाती है और हर तरह दिलासा देती है।

१६ जून—

यह कश्मीर है—भारत का स्वर्ग, रंगीनियों का केन्द्र, सौन्दर्य और प्रेम की पृथ्वी! और आजकल मै इसी भू-स्वर्ग में साँस ले रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि पृथ्वी के और किसी भाग में इतना सुन्दर कोई प्रदेश नहीं होगा। हर तरफ खिले हुये, मुस्कुराते हुये मनोहर फूलों की बहार, हर ओर मीठे, स्वच्छ झरने, और हर तरफ पहाडों के आँचलों में लहराती हुई सफेद, काली, नीली बदलियाँ। ऐसे चित्ताकर्षक वायु-मण्डल में सिवाय घूमने के और कोई काम सूझता ही नहीं और सच तो यह है कि और काम हो भी क्या सकता है?

१६ जून—

दो महीने तक यहाँ निवास रहेगा। आशा है, इस बीच पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँगा। जब से यहाँ आया हूँ तबियत में काफी अन्तर महसूस करता हूँ वे लोग पागल हैं जो कड़वी दवाइयों से दिल और दिमाग़ को तबाह करते रहते हैं। उन्हें यहाँ आ जाना चाहिये। असम्भव है कि वे थोड़े से समय में स्वस्थ न हो जायें। जोहरा मेरे वर्त्तमान स्वास्थ्य पर बहुत प्रसन्न है और मै जहाँ जाता हूँ मेरे साथ जाती है। एक तो

उसकी उपस्थिति ही बहुत बड़ी नियामत है और फिर कश्मीर की स्वास्थ्य वर्द्धक जल वायु ! बड़ा आनन्द रहता है। कल हम एक मीठे झरने के किनारे बैठे थे। जोहरा धीरे-धीरे अपने हाथ से छींटे उडा रही थी। मैने कहा—'ज़ोहरा ! अगर मै तुम्हारे यहाँ न आता और तुम्हे न देखता, तो मेरा जीवन अपूर्ण रहता, मेरी दुनिया अन्धकारमय रहती। तुमने मेरे जीवन को वास्तविक जीवन बना दिया। काश, हम अन्तिम साँस तक एक दूसरे के हर दुख, हर सुख, हर आनन्द में शरीक रहें।"

वह मुस्कराने लगी।

"जोहरा, जब तुम ने मुझे पहली बार देखा, तो अपने मन मे क्या सोचा था ?" मैंने पूछा।

"क्या सोचा ? मै ऐसी मामूली चीजों की ओर ध्यान देनी की कायल नही हूँ।"

"फिर भी तुमने सोचा होगा, यह कौन व्यक्ति है जो इस बेतकल्लुफी के साथ किताबों को उलट-पलट रहा है। इसे ऐसा करने का क्या अधिकार है ?"

"हाँ, तभी तो मैने तुम को अपने कमरे से निकाल दिया था।"

"इसके बाद जब तुमने देखा कि मैं बहुत अच्छा हूँ, तो तुम अपने मन मे लज्जित हुई होगी। है न ?"

"लज्जित ! वह क्यो ? मै हर बात सोच समझ कर कहती हूँ। उस समय यही उचित था। अगर मेरे बजाय तुम होते, तो यही बात कहते।"

"कभी नहीं ! मै प्रेम करने वाले के साथ ऐसा व्यवहार करने के लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकता। निर्दयता का व्यवहार है।"

"पर उस समय हमारी हालत तो ऐसी नहीं थी—हम बिल्कुल अपरिचित थे। न तो तुम मुझे जानते थे, न मै तुम्हें।"

"और अब?"

"और अब! तुम नहीं जानते?"

"जानता हूँ मगर आधी बात।"

"क्या? बताओ तो सही। शायद यह आधी बात पूरी बात निकल आये!"

"म तुम्हारा मँगेतर हूँ—और तुम्हे चाह—"

"हुश! जानते हो इस वक्त झरने के किनारे बैठे हो और मेरे हाथ की दो-चार बुन्दें तुम्हारे कपड़ो को भिगो सकती हैं।"

जिस प्रकार स्वच्छ जल की सतह पर पत्थर गिरने से कम्पन पैदा हो जाता है, उसी तरह उसकी मुस्कराती हुई आँखों में उत्सुकता पैदा हुई। उसने छींटें उडाकर मेरा चेहरा भिगो दिया।

२० जून—

कई दिनों से डायरी मे कुछ नहीं लिखा। कुछ लिखने का अवकाश ही नहीं मिला। घूमने-फिरने के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। जोहरा, मामा जी और मामी को विश्वास हो गया है कि अब मेरे शरीर में बीमारी का नाम-निशान भी नहीं है। मगर मैं अनुभव करता हूँ कि बीमारी के कीटाणु मेरे शरीर के अन्दर मौजूद हैं। अगर यह बात नहीं, तो क्यों शाम के छः-सात बजे शरीर गर्म हो जाता है, क्यों खाँसी आने लगी है, क्यों कुछ दूर चलता हूँ, तो थक जाता हूँ?

७ जुलाई—

दो दिन से बिस्तर पर पड़ा हूँ। चलने-फिरने को बहुत जी होता है, लेकिन चन्द कदम चलूँ तो थक जाता हूँ। एकाएक मेरी यह क्या हालत हो गई। ऐसा अनुभव होता है कि कोई भयानक चीज मेरे शरीर के अन्दर प्रविष्ट होकर मेरे रगों का खून चूस रही है। स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा है।

२५ जुलाई—

अब इन लोगों को ज्ञात हुआ है कि बीमारी ने अभी तक मेरा पीछा नहीं छोड़ा। ये समझ चुके थे कि मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया हूँ। मानव बुद्धि भी कितने जल्द धोखा खा कर प्रत्यक्ष अवस्था से सन्तुष्ट हो जाती है। औरों का क्या कहना, मेरा अनुमान भी यही था कि अब कोई खतरा बाकी नहीं है; दूसरे स्वस्थ लोगों की तरह मेरी रगों में भी स्वच्छ रक्त प्रवाहित है। मेरा प्रत्येक अङ्ग काम कर रहा है। शारीरिक व्यवस्था भी ठीक है। मगर अब? आह! अब मालूम हुआ कि मैं स्वयं को धोखा दे रहा था। मेरे सम्बन्धी भी स्वयं को धोखा दे रहे थे।

३ अगस्त—

परसों यहाँ से रवाना हो जाना है। पूर्ण स्वास्थ्य की आशा लेकर आया था; परन्तु बुरी हालत लेकर चला हूँ। जाहरा तसल्ली देती रहती है—मामूली ज्वर है, थोड़े दिन में स्वस्थ हो जाओगे। मामू जी कहते हैं—"तुम पागल हो। लाहौर में रात के दो-दो बजे तक पढते रहे। माना तुम्हारी आकाँक्षा बहुत ऊँची थी; तुम संसार में अपना तथा अपने कुटुम्ब का नाम उजागर करना चाहते थे, मगर स्वास्थ्य का भी ख्याल रक्खा होता। स्वास्थ्य ही दुनिया में सब कुछ है।,,

यह शब्द सुन कर पछताता हूँ कि क्यों स्वास्थ्य की ओर से लापरवाही की, मगर मैं क्या करता? इस अभागे गुलाम देश में शिक्षित मगर गरीब नवयुवकों के लिये नौकरी हासिल करने का सिर्फ एक जरिया है और वह यही कि मनुष्य किसी मुकाबिले की परीक्षा में शामिल

होकर कोई शानदार दर्जा हासिल करे या एम० ए० मे अव्वल आकर किसी कालेज में प्रोफेसर बन जाय। ऐसी हालत में दिन-रात पढ़ता न रहता, तो और क्या करता? अतएव हर परीक्षा मे अव्वल रहा। बी० ए० मे भी विशेष सफलता प्राप्त की और उसका परिणाम? मेरे खुदा, मेरी आशाओं पर रहम कर।

१६ अगस्त—

आज अब्बा और अम्मी जान दोनो आ गये हैं। दोनों कई क्षण इस तरह देखते रहे जैसे अपने शहाब को पहिचानने की कोशिश कर रहे हैं। आह! इन बेचारों को उनका अपना स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट शहाब इस कमजोर और दुर्बल दशा मे कैसे दिखाई दे सकता था!

अम्मी आँसू रोक कर बोलीं—"मेरे लाल! तुझे क्या हो गया! इतना सा मुँह, यह सूखा हुआ जिस्म; तुझे किसकी नजर खा गई?"

यह कहते समय उनके मन की क्या स्थिति होगी। मेरी आँखों मे आँसू भर आये, मगर रो न सका। दिल का तूफान दिल ही में रहा।

२२ सितम्बर—

एक अव्यक्त भय के पञ्जे मेरी आत्मा मे धँसते जाते हैं। दिल बुरी तरह धड़क रहा है। सीने में एक जहरीला माद्दा बिखरता-फैलता जा रहा है और खाँसी से शरीर की हड्डियाँ आपस मे इस तरह टकराती हैं कि मालूम होता है कि अभी टुकड़े-टुकड़े हो जायँगी।

पास की कोठी से ठट्ठों की आवाजे आ रही हैं। कितने सुरीले हैं यह ठट्ठे! कितनी प्रसन्न हैं यह आवाजे! मेरे मालिक! क्या मै इन ठट्ठों से वञ्चित कर दिया गया हूँ? क्यों? आखिर क्यों? दुनिया में

हर आदमी को हँसने का अधिकार प्राप्त है। हर आदमी हरकत कर सकता है। हर व्यक्ति प्रेम कर सकता है, मगर मै ? मेरा क्या हाल हो गया है ! न उठने की शक्ति, न बैठने की हिम्मत। बिस्तर पर पड़ा तड़प रहा हूँ। साँस है कि मुश्किल से आती है। और खाँसी है कि दम भर के लिये भी पीछा नही छोड़ती। काश ! मेरे दिमाग, मेरे दिल, मेरी आत्मा के साथ यह समस्त आशाये, यह सब कामनायें, अँधेरे में मिल जायँ। बिस्तर पर इस तरह पड़े रहना—आह ! यह मुसीबत मैं सहन नही कर सकता।

६ अक्टूबर—

डाक्टर दिन में दो बार आता है। भाँति-भाँति के यंत्रों से छाती ठोक-बजा कर चला जाता है। और उसके जाने के कुछ देर बाद आलमारी की शीशियों में दो-तीन शीशियों की और वृद्धि हो जाती है। मैं जानता था, मामू जान मेरी बीमारी पर खर्च कर रहे हैं, मगर अब एक और परिवर्त्तन देखा। कल घर से मनीआर्डर आया था। बेचारे अब्बा जान ने कुछ रुपया मकान खरीदने के लिये जमा कर रक्खा था। यह रुपया किस तरह लुटाया जा रहा है !

१२ अक्टूबर—

डाक्टर तसल्ली देता है, चन्द दिन तक स्वस्थ हो जाओगे। और इधर मेरा क्या हाल है ? शरीर के अन्दर असख्य जोंके रक्त चूस रही हैं। खाँसी के हमलों से हड्डियाँ पिघल रही हैं। खाँसते-खाँसते साँस रुक जाती है।

१७—अक्टूबर—

बाग में मालिन का एक नन्हा बच्चा एक नन्हीं सी तितली के पीछे हाथ फैलाये भाग रहा था। मुझे बहुत प्यारा लगा। मैंने उसे अपने

पास बुला लिया। वह अभी मेरे पास पहुँचा ही था कि मालिन भाग कर आई और उसे उठा कर ले गई। जाते हुये कह गई—बाबू जी! यह तङ्ग करेगा आपको। रहने दो, आराम आ जाय तो उठाये फिरना!"

मैं सब कुछ समझता हूँ, मेरे शरीर में मृत्यु के कीटाणु फैले हुये हैं। लोग क्यों न घृणा करे? क्यों न मुझसे भागे? मेरे बर्तन अलग हैं, बिस्तर भी अलग है।

या खुदा! मैं क्या देख रहा हूँ? जोहरा भी दूर रहती है।

१६ अक्टूबर—

आज जोहरा पास से गुजरी तो मेरी आँखों से आँसू निकल आये। उसने मेरी तरफ देखा और सिसकियाँ भर-भर कर रोने लगी! उसकी माँ उसे बाहर ले गई।

जिगर घुल रहा है, फेफड़े चलनी हो गये हैं, माँस सड़-गल रहा है। आह! जब विधाता मानव इच्छाओं को मिट्टी में मिलाने पर तुल जाय, तो वह बिलकुल नहीं देखता, वह आँखें बन्द कर लेता है। मैंने क्या नहीं किया? मेरे लिये क्या नहीं किया गया? डाक्टरों पर वर्षा की तरह रुपये न्योछावर किये गये। कड़ुवी कसैली दवाइयों की बोतलें मेरे हलक में उँड़ेल दी गई। यही नहीं, मने रो-रो कर खुदा से दुआ की, गिड़गिड़ाया, चीखा, पुकारा मगर व्यर्थ। शरीर में धँसी हुई बोझिल जजीरें और बोझिल हो गई! जी चाहता है, इन बोझिल जंजीरों को, इन हड्डियों को भेदने वाले कीटाणुओं को कुचल कर, पीस कर मिट्टी में मिला दूँ। फिर खुले वायु मंडल में, शीतल पवन मे, आज़ादी की साँस लूँ, आज़ादी के साथ हँसूँ, आज़ादी के साथ चलूँ फिरूँ!

मैं अपनी जोहरा को आँसू बहाते हुये नहीं देख सकता। काश!

इस गले-सड़े शरीर के अन्दर यह सुर-सुराती हुई चीज सदा के लिये शान्त हो जाय।

मै सहन में लेटा था। एक सफ़ेद कबूतर दरबे के पास पहुँचा और उसने अभी अपना मुँह कटारे में डाला ही था कि सामने से बिजली की सी तेज़ी के साथ बिल्ली आई और उस अभागे को अपने मुँह में दबा कर तुरन्त गायब हो गई। यह घटना कोई नई नहीं। हर घर में अक्सर ऐसा होता रहता है और हमारी निगाहों के सामने होता रहता है। मगर कौन उसकी तरफ ध्यान देता है? इस महान् सृष्टि मे हमारी हैसियत ही क्या है? किसको खबर है कि बेचारे कबूतर के नन्हे से सीने में कितने अरमान तड़प रहे थे। उसे अपने घोंसले में पहुँच कर, अपने बच्चों से मिलने की कितनी उत्सुकता थी। उसे अपने साथियों से मिल कर पहले की तरह वायु मे उड़ने की कितनी उत्कंठा थी। मगर एक जालिम हस्ती उस पर झपट कर उसके नर्म-नर्म माँस को अपने पैने दाँतों में दबा कर भाग गई ताकि उसकी हड्डियों से अपने शरीर का वह पोषण करे। आ! इसी तरह हर सुबह, हर शाम मानव इच्छाओं को कुचला जा रहा है। मानव हृदय और मस्तिष्क को मिट्टी मे मिलाया जा रहा है। और यह कुचलने वाली हस्ती यह खाक में मिलाने वाली हस्ती कौन है? विधाता! हमारा दयालु विधाता! यह विधाता की व्यवस्था है कि बाप अपनी प्रिय सन्तान से सदा के लिये विलग हो जाता है। माँ अपने बच्चों को सदा के लिये बिलखता छोड़ कर चली जाती है। बेटा माता-पिता के आशापूर्ण हृदयों को टुकड़े-टुकड़े करके मृत्यु की नींद सो जाता है। प्रेमिका अपने प्रेमी को छोड़ कर मृत्युलोक को चली जाती है और प्रेमी अपनी प्रेमिका के कोमल हृदय को चूर-चूर करके इस ससार से दूसरे ससार को सिधार जाता है। क्या विधाता इन हृदय विदारक दृश्यो को नही देखता? निराशा की मिट्टी में तड़पती हुई आशाओं पर निगाह नही डालता? इन रक्त मे नहाई हुई आकाँक्षाओं का विचार नहीं करता? वह सब कुछ देखता है, वह सब

कुछ जानता है; मगर सितम यह है कि उसे इस तरह जीवधारी हस्तियों को कुचलने में आनन्द आता है वह मरते हुये मनुष्यों को देख कर प्रसन्न होता है। वह सिसकती हुई हस्ती पर दृष्टि डाल कर ठट्ठे लगाता है। वह मिटते हुये अरमानों, तड़पती हुई आशाओं, सिसकती हुई आकाँक्षाओं का खुश हो हो कर तमाशा देखता है। फिर भी विधाता दयालु है! अगर विधाता दयालु है, तो फिर वह बिल्ली भी दयालु है जो अपने शिकार से खेलती है और फिर उसे एकदम निगल लेती है!

नदी में बाढ आती है और गॉव के गॉव चन्द क्षणों में नष्ट हो जाते हैं। भूकम्प आता है और एक सुसकृत सुन्दर शहर पलक झपकाते मिट्टी का ढेर बन जाता है। ज्वालामुखी पहाड फटता है और उसके पास के निर्दोष निवासियों के शरीर, मॉस के लोथडे बन कर वायु मे उड़ने लगते हैं। हरी-भरी खेती लहलहाती है और आकाश से बिजली गिर कर उसे जला कर, राख कर देती है। डालियों पर फूल खिले होते हैं कि पतझड़ आता है और सारा बाग उजड़ कर जगल बन जाता है। भोले भाले पक्षी वायु में उड़ते रहते हैं कि बाज आता है और उन पर झपट कर उनकी बोटी-बोटी करके खा जाता है।

यह क्या व्यवस्था है विधाता की?

काश! मेरे हाथों में इतनी शक्ति आ जाय कि मैं इस जालिम व्यवस्था के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ! इस बर्बरता को पद-चिन्ह की तरह मिटा दूँ, इस अत्याचार को सदा के लिये निद्रामग्न कर दूँ इस जुल्म को जहन्नुम की दहकती हुई लपटों में फैंक दूँ, इस सितम को मृत्यु के अन्धकार में ढकेल दूँ—और फिर एक नया ससार बने। नया आकाश हो, नई पृथ्वी हो, जहाँ किसी प्रकार का अत्याचार न हो, किसी प्रकार का जुल्म न दिखाई दे, किसी प्रकार की बर्बरता नजर न आये।

काश! यह वर्त्तमान् व्यवस्था एक फूल बन जाय। मैं उस फूल को मसल डालूँ—इस तरह मसल डालूँ कि उसका तनिक अंश भी बाकी न रहे।

मालूम होता है, आज मेरा हृदय फट जायगा—पसली की हड्डियाँ चूर-चूर हो जायँगी।

प्रत्येक अग टुकड़े-टुकडे हो जायगा—जो कुछ होना है जल्दी हो जाय।

जीवन एक अन्धकार-मय रजनी बन गया है, सीने मे तूफान उठता है। रो लेता हूँ।

इन लोगों की आँखों में यह क्या चीज चमकती है? मुझसे निराश हो चुके हैं।

ससार अन्धकार-पूर्ण है। शायद रात आ गई है—दिन की रोशनी कब आयगी?

अँधियारी रात—अन्धकार में धीरे-धीरे आ रही है। भाग जाऊँ? कही बहुत दूर!

···वह आ रही है—अन्धकार मे धीरे-धीरे!

एक दिन की बात है कि सुबह-तड़के ही अम्माँ ने आकर मुझे जगाया और कहा—"उठ तो सही जल्दी, बेगम साहिबा चीख रही हैं।" वास्तव मे बेगम साहिबा का चीखना एक साधारण बात थी। मैं जल्दी से उठी और पहुँची, बेगम साहिबा को सलाम किया; जिसके जवाब मे उन्होंने खूब शोर मचा कर मुझे एक चवन्नी दी कि शीघ्र से शीघ्र कालेज की दूकान से जाकर जलेबियाँ ले आऊँ, क्योंकि वास्तव में बेटे साहब को कालेज जाने से पहले नाश्ते की जरूरत थी, और सयोग-

वश नाश्ते का दूसरा कोई प्रबन्ध असम्भव था। चलते-चलते बेगम साहिबा ने मेरी पहली लापरवाहियो और सुस्तियों का हवाला देकर हड्डी-पसली तोड़ देने का पक्का वायदा किया, और मैं बदहवास होकर जलेबी लेने दौड़ी। सड़क के मोड पर आयी हूँ, तो मुझे एकदम से लगा कि चवन्नी मेरे हाथ में नही है! मुठ्ठी खोल कर देखी, तो सचमुच चवन्नी का पता नहीं, कहीं गिर गई थी। मेरी जान ही तो सूख गई। जानती थी कि यदि चवन्नी न मिली या मिलने मे कुछ भी असाधारण देर हुई, तो बेगम साहिबा आफत ढा देंगी, और इस ख्याल से ही मैं कॉप उठी।

मैंने चवन्नी को बहुत खोजा; वापस जाकर रास्ते को भी देखा, किन्तु चवन्नी कहीं नही मिली। दरअसल मै इतनी घबरा गई थी, और मेरे हवास इतने बिगड़ चुके थे कि यदि मिलने वाली होती, तब भी चवन्नी न मिलती। मैं बेहद परेशान थी और नहीं कह सकती कि उस समय मेरे ऊपर कैसी घोर विपत्ति आयी थी कि ऐसे समय में किसी ने पास ही कहा—"क्या ढूँढती है?"

"चवन्नी!" ऊपर देखते हुये मुँह से आप ही आप निकल पड़ा।

कोई अठारह-उन्नीस वर्ष का एक नौजवान मैला सा कोट और बिना फूँदने की तुर्की टोपी पहिने और हाथ में कुछ सौदा लिये खड़ा था। सूरत-शक्ल से किसी का नौकर जान पडता था। चेहरे और आँखों से कुछ शोखी और शरारत प्रकट हो रही थी। उसने जब मुझसे पूछा तो मैंने एक ही दो शब्दो मे चवन्नी खो जाने और अपनी परेशानी का जिक्र किया।

"मैं अभी ढूँढ दूँ?" उसने कुछ मुस्कराते हुये कहा।

मैंने गिड़गिड़ा कर कहा—"ढूँढ दो।"

उसने अपनी आँखो को चमका कर और मुस्करा कर अत्यन्त शरारत-भरे स्वर मे कहा—"मगर तुझे ढूँढने की फीस देनी पड़ेगी।"

मैंने कुछ चकित हो उसकी ओर देखा, तो वह मुस्कराता हुआ शरारत से बोला — 'अगर तू अपना मुँह चूम लेने दे, तो मैं अभी तेरी चवन्नी ढूँढवा दूँ।"

मरे पर सौ कोड़े, वही हाल मेरा हुआ। मैंने जलकर कहा—"बद-माश! चल दूर हो यहाँ से···बेशरम, बेहया कहीं का!"

उसने मुस्करा कर कहा—"तब ठीक रहेगा, जब बेगम साहिबा की जूतियाँ पड़ेगी। मैं मुफ्त में तेरी चवन्नी क्यों ढूँढू? बड़ी आयी चवन्नी वाली, और फिर ऊपर से बदमाश कहती है!"

यह कह कर वह जाने लगा, और मैंने स्वयं उसको फटकारा। लेकिन एकाएक मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों डूबते को तिनके का सहारा मिला था, जो फिर छूट गया। बेगम साहिबा की दिल हिला देने वाली चीखे कानों में गूँजती मालूम हुई, व्यंग्य-बाणों की मार खाकर अम्माँ रोती हुई प्रतीत हुई। पर······मैंने सोचा, जब मुझे चवन्नी न मिली, तो इसे कैसे मिल जायगी? लेकिन नहीं, एक सहारा सा टूटता दिखाई दे रहा था। मैने परेशान होकर कहा—"और जो न मिली तो?"

उसने घूम कर कहा—"न कैसे मिलेगी।"

मैंने कहा—"एक पैसा दूँगी, ढूँढ दे।" दरअसल इससे अधिक मै दे भी नही सकती थी।

उसने हँस कर कहा—"एक पैसा मै तुझे खुद दे दूँगा और चवन्नी भी ढूँढ दूँगा।

मैंने फिर हकला कर कहा—"और······और······जो न मिली तो ?"

उसने फिर वही कहा—"नही कैसे मिलेगी, मै अभी-अभी ढूँढ़े देता हूँ, तुझे चवन्नी से मतलब ।"

मैंने जिस तरह भी बन पड़ा, घुटे हुये स्वर मे कहा—"ढूँढ दो ।"

वह तुरन्त लौट पड़ा । कहाँ गिरी थी ? किधर से आ रही थी ? इसी प्रकार के बेतुके सवाल करते हुये उसने जल्दी-जल्दी चवन्नी की खोज आरम्भ कर दी । मैं उसके पीछे-पीछे थी और भरसक उसके प्रश्नों के उत्तर देती जाती थी । अचानक उसके मुँह से प्रसन्नतापूर्ण स्वर में निकला—"मिल गई !"

और मैं चवन्नी लेने के लिये बढ़ने ही वाली थी कि एकदम से ठिठक कर रह गयी और एक अजीब परेशानी और घबराहट मे पड़ गई ।

उसने कहा—"मेरी ढुँढ़वाई दो ।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन चवन्नी लेने के लिये मेरा हाथ स्वय उसकी ओर बढ गया । उसने बायें हाथ से मेरा हाथ पकड़ कर धीरे से मुझे अपनी ओर घसीटा और चवन्नी वाला हाथ तेजी से मेरी गर्दन में डाल कर मेरा मुँह चूम लिया । मैंने चवन्नी हाथ से ली और छुड़ा कर फूर्ती से कालेज की ओर चली । कोई दस कदम भी न गयी हूँगी कि अपनी लाचारी पर मेरा हृदय भर आया और,मुझे रोना आ गया । मैंने धीरज से काम लिया और आँसू अपने मैले दुपट्टे से पोछ डाले ।

* * *

मैं जलेबी लेकर लौटी तो बेगम साहिबा को अम्माँ को कोसते और फटकारते हुये पाया । बस, यह समझ लीजिये कि कुशल हो गई जो मैं

मारी नहीं गई, नहीं तो बेगम साहिबा का पारा उतना ही गरम हो चुका था। और मुझे मालूम हुआ कि खुदा ने बड़ी मेहरबानी की, जो एक अजीबोग़रीब शर्त पर चवन्नी ढूँढ़ने वाला भेज दिया।

* * *

उसी दिन की बात है, हम दोनों माँ-बेटियाँ घर के काम-काज से छुट्टी पाकर अपनी कोठरी में लेटी थी। माली मौसी भी आयी हुई थीं। ये एक हद से ज्यादा बकवादी पड़ोसिन थीं। आज कुछ अपनी जवानी के किस्से सुना रही थीं। उनकी कहानी भी बड़ी करुण और शिक्षाप्रद थी। वह यह कि वह एक अत्यन्त ग़रीब आदमी की लड़की थीं। सूरत शक्ल खुदा ने अच्छी दी थी। कोई अच्छे खाते-पीते रुपये वाले वकील थे। वे माली मौसी के कथनानुसार उन पर एक जान छोड़ हजार जान से आशिक हो गये। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने माली मौसी से विवाह कर लिया। लेकिन इस प्रेम और विवाह का यह परिणाम हुआ कि थोड़े ही दिनों के बाद उन वकील साहब के सगे-सम्बन्धी दौड़ पड़े और उचित तथा अनुचित दबाव डाल कर स्वयं इसको तथा वकील साहब को इतना तङ्ग किया कि वकील साहब के घर से इन्हें निकलना पड़ा। स्पष्ट है कि उनके साथ घोर अन्याय हुआ, और इस समय उन्होंने बड़े विस्तार के साथ अपनी दुःख कथा सुना कर अम्माँ से अपने निरपराध होने की स्वीकृति चाहते हुये यह भी चाहा कि अम्माँ यह निर्णय करें कि सारा दोष वकील साहब तथा उनके सम्बन्धियों का था।

लेकिन मैं आप से सच कहती हूँ कि मुझे उनका हाल सुन कर उलटा उन्हीं के ऊपर क्रोध आया, और मैंने जल कर कहा—"माली मौसी, सच पूछती हो तो खता तुम्हारी ही थी।"

माली मौसी बोलीं—"लो और देखो बहिन, इस कल की छोकरी की ज़बान तो देखो। मेरी खता बताती है, कुँवारी होकर पटापट बोलती कैसी है।"

मैंने तेज होकर कहा—"बेशक, सारी खता तुम्हारी ही थी। तुमने शादी ही क्यो की? क्या तुम नही जानती थीं कि तुम्हारी हैसियत क्या है, और वकील साहब की हैसियत क्या है? क्या तुम्हे पता नही था कि वकील के सब के सब रिश्तेदार तुम्हारे ख़िलाफ होकर लड़ने को तैयार होंगे?"

वह बोलीं - "लड़की होश की बाते कर। मुझे क्या मालूम था कि सब के सब लड़ कर मुझे निकाल देगे और पचास रुपये महेर के हाथ पर धर दगे।"

मैंने कहा—"और दूसरी खता तुम्हारी यह कि निकलीं क्यों? तलाक़ क्यों लिया?"

मौसी बोली "मैं कोई राजी-ख़ुशी निकली? निकलती नही, तो करती क्या?"

मैंने बात काट कर कहा—"करतीं यह कि जूती लेकर खड़ी हो जातीं, और जो निकालने को कहता, उसकी अच्छी तरह खबर लेतीं। और यह तो बताओ कि पचास रुपल्ली का महेर क्यो बाँधा था? मुझ सरीखी अगर कोई होती, तो वकील और वकील के सब रिश्तेदारों को मार डालती या खुद मर जाती। खता सब तुम्हारी है, जो कान दबाये भीगी बिल्ली की तरह रोती-बिसूरती निकल गई। पकड़ कर बैठ जाती उस कमबख्त वकील का हाथ और कह देती कि जो तू तलाक़ देगा या बेख़ता निकालेगा, तो अपनी और तेरी जान एक कर दूँगी। आप ही सब ठीक हो जाते।"

मौसी मेरी ये बाते सुन कर बहुत खफा हुई और मुझे खूब ताने दिये और जो मुँह में आया, सो बक गईं कि तू ही मारना अपने ख़सम

को, मैं भी देखूँगी। मैं चुपचाप सब सुनती रही और कुछ न बोली। पर उन्होंने जो किस्सा सुनाया था, उससे साफ यही प्रकट होता था कि खता सरासर उनकी थी कि चुपचाप रोती-बिसूरती निकल गई और फिर दुनिया भर की ठोकरें खाती फिरीं।

* * *

अब जरा उन महाशय का किस्सा सुनिये, जिन्होंने मुझे चवन्नी ढूँढ कर दी थी।

एक दिन की बात है कि सध्या का समय था, और मैं बेगम साहिबा का एक खत लिये शहर को जा रही थी, जहाँ बेगम साहिबा की एक बहिन रहती थी। बजाय सड़क-सडक के उस मैदान में होकर जा रही थी, जो हबीबबाग के सामने है। जब हबीबबाग से आगे पहुँची, तो सामने से कोई आता हुआ मिला। चूँकि अँधेरा सा था, अतः मैंने उस समय तक नहीं पहिचाना जब तक बिलकुल निकट न आ गया। यह वही नौजवान था जिसने मेरी चवन्नी ढूँढ दीथी। मुझे देख कर रुक गया और बोला—"कहाँ जाती है?"

मैंने कहा—"छतारी-कम्पाउण्ड जाती हूँ।"

"ज़रा ठहर जा, एक बात सुनती जा!" वह बोला।

मै जरा रुकी, तो वह कहने लगा—"मुझसे शादी करेगी?"

मैंने कहा—"हट!" और एकदम से चल दी।

उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया और कहने लगा—"ला चवन्नी ढूँढ दूँ।"

मैंने जोर करते हुये कहा—"छोड़ दो, मुझे जाने दो।"

पास ही एक आदमी दिखाई दिया। उसने मुझे छोड़ दिया मगर धीरे से कहा—"तेरी माँ से मैं कल बातचीत करूँगा।"

मैं सोचती हुई चली गई कि न जाने कहाँ नौकर है, कौन है, क्या करता है ? अदमी तो वैसे ठीक जान पड़ता है। रंग-रूप कुछ अच्छा नहीं, तो बुरा भी नहीं है। आदत का भी ठीक ही जान पड़ता है। ग़रज़ कि इन सब बातों पर विचार किया, तो अपने मन में उसके लिये काफी स्थान पाया।

हफ्ते भर के भीतर ही भीतर मेरा उसके साथ विवाह हो गया। मेरा पति कालेज में नौकर था और दस रुपये महीना पाता था। मै समझी थी कि वह बड़े अच्छे चाल-चलन का होगा और मुझे बडे सुख से रक्खेगा, लेकिन महीने भर मे ही उसकी यह हालत हो गई कि वह बात-बात पर मुझे मारने लगा, और वह भी इस तरह कि मेरी हड्डी-पसली एक कर देता था। दिन भर उसका काम करती, उसकी माँ की सेवा करती और इसका फल यह मिलता कि निरपराध मारी जाती। मैं समझती थी कि मेरी सास मुझे पिटवाती है, लेकिन पता चला कि ऐसा नहीं है, बल्कि उसकी संगीत ही ऐसी है। बदमाशों के साथ रहना, कालेज के लड़कों की चीजें चुरा कर लाना, शराब पी-पी कर उचक्कों के साथ लड़ते फिरना और कई-कई दिन रात-रात भर घर से गायब रहना उसकी आदत थी। और जब जुये में हार कर आता, तो सारा क्रोध इस निर्दयता के साथ मेरे ऊपर उतारता कि जो भी देखता मेरे हाल पर तरस खाता था। किन्तु इस निर्दय व्यवहार के होते हुये भी, मैं सच कहती हूँ कि मेरे दिल में न केवल उसके लिये जगह थी, बल्कि मुझे उससे प्रेम था और बड़ी आशा थी कि कभी न कभी वह ठीक रास्ते पर आ जायगा। कभी-कभी ऐसा होता कि मै यह सोच लेती कि इसे छोड़ दूँ और मजा चखा दूँ, किन्तु फिर यह सोचती कि बन्दी, तुझे दूसरा आदमी तो करना नहीं है। बुरा है तो यही, और भला है तो यही। जिन्दगी तो आखिर इसी के साथ बितानी है—दुख से बीते, चाहे सुख से।

दुर्भाग्य से मेरे विवाह को अभी दो महीने भी नही बीते थे कि मेरे ऊपर ये सब अत्याचार हो चुके थे, और अब खुदा का करना यह हुआ कि जहाँ मेरा पति नौकर था, वहाँ उसने लड़कों की चोरी की। कालेज के लड़के पूरे जालिम होते हैं। उन्होंने उसे पेड़ में उलटा लटका कर खूब पीटा। पुलिस के हवाले कर दिया होता, किन्तु रियायत की, और मार-पीट कर तनख्वाह जब्त कर के निकाल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि दिन भर सिवाय मुझे मारने के उसे और कोई काम ही नही रह गया।

सयोग की बात कि उन्हीं दिनों में जब कि मेरे पिटने की हद हो चुकी थी, मेरी माँ बीमार पड़ गई और बड़ी कठिनाई से मुझे घर जाने की आज्ञा मिली। मुझे घर आये हुये तीसरा दिन था, और मैं कालेज के अस्पताल से दवा लेकर आ रही थी, सड़क छोड कर मै एक पगडडी पर हो ली, जो एक बॅगले के विस्तृत और उजाड़ अहाते के किनारे को काटती हुई निकलती थी। यहाँ एक पेड़ के नीचे सिर्फ एक कमीज और पतलून की जेबों में हाथ डाले, कालेज का एक लड़का खड़ा था, जो शायद उसी बॅगले में रहता था। मुझे आते हुये उसने बड़े गौर से देखा और जब मैं पास आयी, तो रास्ता रोक कर सामने खड़ा हो गया और क्रुद्ध-रूप बना कर कड़े स्वर में मुझसे बोला - "तू कौन है, और बॅगले के अहाते से होकर कैसे निकली।?"

मैंने अपने रास्ते की ओर हाथ उठा कर संकेत किया और कहा— "मै उधर जा रही हूॅ।"

"मगर बॅगले में कैसे घुस आयी? यह कोई सड़क है? जिसको देखो, घुसा चला आता है।"

मैंने धीरे से कहा—"मैं लौटी जाती हूॅ।" और यह कह कर पलट कर चलने लगी।

उसने एकदम से ज़रा नर्म होकर धीमे स्वर में कहा—"अच्छा, खैर निकल जा, लेकिन सुन तो..."

इतना कह कर उसने मेरी ओर गौर से देखा। कुछ कहना चाहा, पर रुक गया, लेकिन मैं जैसे ही चलने को हुई, उसने फिर उसी स्वर में कहा—"जरा एक बात तो सुन।"

मैंने कहा—"मुझे देर हो रही है मेरी माँ बीमारी है।"

उसने मुझे सिर से पैर तक गौर से देखते हुए कहा—"तू कहाँ रहती है, और तेरी माँ क्या करती है?"

मैंने बता दिया।

उसने पूछा—"तेरी शादी हो चुकी है?"

मैंने जवाब तो न देना चाहा, पर बहुत बुरा लगा मुझे; लेकिन मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ!"

उसने मेरे पति के बारे में पूछा, तो मैंने कोई उत्तर न दिया और सीधी अपनी राह ली। लेकिन जैसे ही मुड़ी हूँ, उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। और जैसे ही पकड़ा, मै घूमी और घूमते-घूमते मैंने दूसरा हाथ इस जोर से उसके मुँह पर मारा कि मेरा हाथ छूट गया।..."
कमबख्त..." मेरे मुँह से निकला—"ठहर तो जा बदमाश!"

"निकल हमारे बँगले से।" उसने कहा—"चोर कहीं की निकल लौट वापस।" यह कह कर उसने रास्ता रोक लिया, और मैं तेजी से पलटी, पर वह चला ही आ रहा था मेरे निकट।

मैंने कहा—"मैं चिल्लाती हूँ...।" इसके जवाब में उसने खुद अपने नौकर को पुकारा, और मैं तेजी से चली बड़बड़ाती हुई, यह सोच कर कि इसके बँगले से निकल जाऊँ। घूमी, पर मेरा घूमना था कि उसने लपक कर पीछे से मेरी आँखें दोनों हाथों से बन्द कर लीं। मैंने अपने को झुक कर छुड़ाया। मेरे तन में आग लग गयी। बिना

कुछ सोचे समझे मैंने पैर से जूती ली और जोर से उसके रसीद की। जूती उसके कन्धे पर पड़ी, और वह उछल कर हँस कर बोला—"एक और!"

मैंने दाँत पीस कर उसके मुँह पर खींच मारी। जूती उसके तो लगी नहीं, परे गिरी। मगर उसने लपक कर जूती उठा ली और मुँह के पास ले जाकर जोर से चूम कर बोला—"क्या कहना है।"

उसका यह कहना था कि मैं इतनी लज्जित सी हुई कि बदहवास होकर भागी, और वह मेरे पीछे लपका, आवाज़ें कसता हुआ। पर मैं निकल चुकी थी, और सामने से दो- चार आदमी सड़क पर जो दिखाई दिये, तो वह स्वयं जूती लेकर भाग गया।

मेरे एक पैर मे जूती थी। इस विचित्र अनुभव मे शरीर काँप-सा रहा था। कैसा बदमाश और बेतमीज आदमी है, मैंने मन मे कहा। न जाने उसके जूती चूमने से मुझे कैसी लज्जा और शर्म आ रही थी। बड़ा बुरा लग रहा था ऐसा कि यदि वह फिर मिले, तो आँख मिलाते न बन पड़े। एक जूती पैर में लिये घर पहुँची, पर माँ से कुछ न कहा, क्योंकि उनका जी पहले की तरह खराब था। जब मैंने यह पता लगाया कि वह कौन था तो मालूम हुआ कि कोई राजा साहब हैं, उन्हीं का कुँवर है कालेज में पढ़ता है और इसी बँगले में रहता है। बहुत पैसे वाला है, नौकर-चाकर भी हैं और मोटर भी है।

दूसरे ही दिन की बात है कि मै कोई दस बजे कालेज दवा लेने जा रही थी, कि बँगले से एक मोटर निकली। क्या देखती हूँ कि मोटर पर अँगरेजी टोपी पहिने स्वयं मोटर चला रहा है। मुझे देखते ही हाथ उठा कर सलाम किया। साथ मे दो लड़के और थे, और उन सबने झाँक कर मुझे देखा। मैंने घबरा कर मुँह फेर लिया और दूसरी ओर घूम गई। मोटर मे से आवाज आई—"एक और जूता..." पर मैंने घूम कर देखा भी नहीं, और मोटर चली गई।

इस घटना के तीन दिन बाद की बात सुनिये। मै सध्या समय दवा लेने जा रही थी, तब मैने देखा कि वह नीले रग का कोट और सफ़ेद पतलून पहिने 'फ़ील्ड' पर जा रहा है। मुझे देखते ही वह अपना रास्ता छोड़ कर मेरे पीछे-पीछे अस्पताल मे पहुँचा, पर कुछ बोला नहीं। मै यह सोच कर बैठ गई कि यह चला जाय तब दवा लेकर निकलूँ। अतः वह चला गया, पर इस बीच अँधेरा हो गया। दवा लेकर चली, तो बत्ती जल चुकी थी। मुझे सन्देह तक न था कि मेरी ताक मे कोई बैठा होगा, अतएव मैं बेफिकरी के साथ बाग मे से निकल कर सड़क पार करके गेंद खेलने के मैदान मे निकली। मुझे खयाल भी न था कि पीछे से आकर मज़बूती के साथ उसने मेरी आँखे अपने दोनों हाथों से बन्द कर लीं।

ज़ोर से कोहनी मार कर मैने अपने को छुड़ाया और जल कर मैंने कहा—"बदमाश......बेशरम......बेहया कही का!" यह कह कर मैंने एक बड़ी सी ईंट उठाई और कहा—"सिर फोड़ दूगी! बड़ा राजा का बच्चा बना है, बेहया......शरम नही आती किसी की माँ बहिन को छेडते!"

उसने निकट आते हुये कहा—"ले मार... मार .....फोड़ दे सिर......ले, तुझे कसम है..."

यह कह कर बिलकुल पास आ गया। मै उसी तरह ईंट उठाये जरा पीछे हटी। वह बोला—"चाहे तू मार डाल मुझे मैंने तो सोच लिया है. ."

'क्या सोच लिया है?" मैंने पूछा।

"तुझे पकड कर ले जाऊँगा।"

"क्या कहा?" मैंने गर्दन टेढी करके कहा—"शरम नहीं आती गरीबों को छेड़ते!"

वह बोला—"शादी में शरम काहे की, मुझसे शादी कर ले।"

मैंने डपट कर कहा—"बकवास मत कर!"

यह कह कर मैं ईंट फेक कर बड़बडाती, कोसती और उसकी माँ-बहिन को बखानती चली। वह भी पीछे चला। मै लपकी कि जल्दी से सड़क पर पहुँचूं। वह भी लपका, और मैं सड़क पर 'डिग्गी' (अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के अहाते का एक तालाब) के पास निकलूँ कि उसने मेरे साथ फिर बदतमीजी की। मैंने दिया कस कर उलटे हाथ का थप्पड़। वह यह कहता हुआ निकल गया कि चाहे कुछ हो जाय, तुझे न छोड़ूँगा।

मैंने उसकी माँ-बहिन को खूब गालियाँ दीं, और वह भी खूब जोर-ज़ोर से। पर वह गायब हो गया।

अब मुझे यह डर लग रहा था कि यह मेरे पीछे पड़ा हुआ है। कहीं ऐसा न हो कि मेरे पति के कान तक बात पहुँच जाय, तो बिना कुछ कहे-सुने वह मेरा सिर फोड़ कर रख देगा। लेकिन इसके पहले कि कुछ और बात हो, मामले ने एक विचित्र पलटा खाया।

इसके तीसरे दिन की बात है कि इधर तो मेरी माँ की दशा खराब, और उधर मेरे पति ने काजी के यहाँ जाकर मुझे तीन तलाक़ दिये, और दो आदमियो को गवाह बना कर उनके दस्तखत कराके एक आदमी के हाथ तलाकनामा लिखवा कर मेरे पास भेज दिया।

मुझे जब यह तलाकनामा मिला, तब दोपहर का समय था। मैं यह भी नहीं जानती थी कि तलाकनामा कैसा होता है और क्या क़ायदा है। मैंने जल कर उसे फेंक दिया और कह दिया कि लाने वाले से कह देना, मैं इसे नहीं मानती; और यदि तलाक दिया उसने तो हजार रुपया रखवा लूँगी और जेल करा दूँगी। यद्यपि मेरा महेर धर्म के अनुसार सिर्फ साढ़े तीन रुपये का था। मेरा एतराज़ यह था कि मुझे अकारण

तलाक दिया और विना पूछे-ताछे तलाक़ दिया। इसलिए मैं समझती थी कि यह तलाक नहीं हुआ।

लेकिन बाद में जब दो-चार आदमियों ने तलाकनामा देखा, बेगम साहिबा ने देखा और जाननेवालों को दिखाया तब मुझे विश्वास हो गया कि तलाक़ हो गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मेरे ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा! मैं कुचल कर रह गई, लेकिन आध ही घंटे बाद मेरी हिम्मत कहाँ से कहाँ पहुँची। दुःख की जगह क्रोध ने ली, और मैं रुग्ण माँ को छोड़ कर सीधी अपनी ससुराल पहुँची, और जान पर खेल कर अपने पति से सब के सामने जवाब तलब किया।

मैंने कहा---"मैं कभी भी घर से न निकलूँगी। मुझे तलाक नहीं हुआ, और तेरी और अपनी जान एक कर दूँगी! उस धूर्त ने बड़ी निर्दयता से काम लिया। मेरे ऊपर दोष लगाया, गालियाँ दीं। परिणाम यह हुआ कि मैं खुद मारने और मरने पर तुल गई और उसने खूब मारा। मतलब यह कि खूब ही तो पिटी। जितना हो सका, उसने मुझे मारा। सारांश यह कि मैं खूब अपमानित होकर और पिट-पिटा कर अपने भाग्य को कोसती वहाँ से निराश और असफल लौटी।

इसके दूसरे दिन सुबह आठ बजे मेरी माँ का सरसाम की हालत में देहान्त हो गया, और मैं अब इस दुनिया में अकेली रह गई। मेरे होश उड़ गये, और दुख के मारे दिमाग उलटता हुआ जान पड़ा। क्या करूँ और किधर जाऊँ? बेगम सहिबा ने बहुत दिलासा दी, किन्तु व्यर्थ। मैं जानती थी कि उनके यहाँ गुज़र होनी मुश्किल है। फिर भी इसके सिवाय कोई चारा नहीं था।

माँ को मरे चार दिन बीते होंगे कि एक विचित्र घटना घटी। मेरे एक नाते के देवर साहब थे। वह महाशय पधारे, और मज़ा तो देखिये कि मुझसे विवाह का प्रस्ताव लेकर। उन्होंने साफ़-साफ़ तो 'निवेदन' नहीं किया; लेकिन मातम-पुरसी के बहाने अपने मन की बात गोल-मोल

शब्दों मे कह गये। और इस सिलसिले में मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे पति ने किसी राजा के लडके से पाँच सौ रुपयें लेकर उसके कहने से मुझे तलाक दिया है, और वे पूछने लगे कि बताऊँ कि यह लड़का कौन है?

मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, किन्तु मैने अपना भाव इस पर प्रकट न होने दिया। यद्यिप मैं यह जान गई कि राजा का लड़का कौन है। हो कौन सकता था सिवाय उसके। लेकिन मैने कुरेद कर और हाल पूछा। वह बिलकुल न बता सका कि कौन है; लेकिन रुपये के लेन देन और तलाक का पूरा-पूरा विवरण जो बताया, तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि सिवाय उसके और अब कोई नहीं हो सकता, जो मुझे कई बार राह में टोक चुका है। मैंने यह सम्वाद लानेवाले को तो विदा किया और अब नई चिन्ता में पड़ गई। एक रुपये-पैसे वाले बदचलन और आवारा लड़के ने केवल मुझे खिलौना बनाने के लिये मेरा घर बिगाड़ दिया। अब प्रश्न यह था कि यदि यह बात सच है, जिसमे सन्देह की गुँजाइश ही नही, तब मुझे क्या करना चाहिये। मेरे साथ बडा अन्याय हुआ; मुझे अब क्या करना चाहिये? मैं सोचने लगी, जो होगा सो देखा जायगा, लेकिन इस समय तो मै उस कमीने का सिर फोड़ दूँगी। मेरा सारा शरीर क्रोध के मारे काँप उठा। दुनिया अँधेरी मालूम होने लगी। प्रतिशोध की आग से कलेजा जलने लगा। मैंने सकल्प किया कि मैं उस दुष्ट से बदला लूँगी, जरूर लूँगी, चाहे कुछ हो जाय। उसे दिखा दूँगी कि ग़रीब क्या होते हैं, क्या कर सकते हैं? मार डालूँगी और स्वय मर जाऊँगी! गला चबा जाऊँगी, या तो मेरा या उसका खून होगा। मेरे लिये दुनिया अँधेरी थी। माँ की मृत्यु ने और भी रहे-सहे होश बिगाड दिये थे। दाँत पीसती थी और क्रोध में मुट्ठी बाँध कर रह जाती थी कि क्या करूँ, क्या न करूँ माँ का मरना घाव पर घाव था। मैंने दृढ संकल्प कर लिया कि आज या तो वह नहीं या मैं नहीं। हाय, जालिम ने मेरी मिट्टी कैसे खराब की थी!

मै यह सच कहती हूँ कि शायद बिलकुल होश में नहीं थी, जब मैं बॅगले पर पहुँची हूँ, यह सोच कर कि खून करके लौटूँगी। कोई तीन बजे होंगे दिन के। एक नौकर था जिससे मैंने पूछा कि कुँवर साहब कहाँ हैं? इतने में क्या देखती हूँ कि चिक उठा कर पुकारते हैं—"कौन है?"

मैंने लाल आँखों से घूर कर देखा और कहा—"मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

झट से निकल आये और बोले—"क्या?"

मै आगे बढी और मैंने कहा—मै बात करना चाहती हूँ।"

बोले—"अच्छा, अच्छा ... ...आ जाओ!"

यह कह कर अपने कमरे मे चले गये। मैं बरामदे में पहुँची। कमरे में जाते हुये झिझकी, वह सिर निकाल कर बोले—"आ जाओ अन्दर, डरो मत!"

मैंने मन में कहा—'डरती तो मैं मौत से भी नहीं, भला तुझसे क्या डरूँगी।'

मै कमरे में दाखिल हो गई। वह तुरन्त बाहर निकल आये और नौकर से कुछ बातचीत करने लगे। मैंने कमरे को चारों ओर से देखा।

दीवार पर बहुत से चित्र टँगे थे। कमरे में दरी का फर्श बिछा हुआ था। एक ओर मसहरी लगी थी, बीच मे कुरसियाँ और मेज़ थी। एक कोने में एक रेक पर किताबें सजी हुई रक्खी थीं। कमरे की सब चीजे कमरे के मालिक की अमीरी का विज्ञापन कर रही थीं। प्रत्येक वस्तु अत्यन्त कीमती और सुन्दर थी। मैं देख ही रही थी कि भीतर लौटे। मैं खड़ी थी अन्दर घुसते ही मुस्करा कर बोले—"बैठ जाओ!" और कुरसी की ओर सकेत किया। मैंने कुरसी के साफ, सुन्दर

फूलदार गद्दे को देखा और अपने फटे हुये मैले कपड़ों को। कुछ न बोली। खड़ी रही, तो फिर आग्रह किया। मैंने कड़े स्वर में कहा—"मुझे जाना है।"

वह बोले—"बैठो न इतमीनान से, बैठ जाओ।"

मैंने तेज होकर कहा "मैं बैठने नहीं आयी हूँ..." मेरी आँखों से आग बरसने लगी।

"फिर फिर...यह"

"फिर यह," मैंने बात काट कर गुस्से में कहा—"यह तुमने क्या किया!"

"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था।"

सिर हिला कर मैंने कहा—"पहले ही कह दिया था!" और खूनी आँखों से उसे देखा।

वह मुस्करा कर बोले—"मैंने पहले ही कह दिया था कि तुझे नहीं छोड़ूँगा।"

"और मैं तुझे जीता न छोड़ूँगी।" यह कह कर मैं एकदम से झपट पड़ी। मेज पर लकड़ी का रूल पड़ा था। मै पहले ही उसे शस्त्र बनाने का निश्चय कर चुकी थी। उठा कर जो दिया जोर से सिर पर, तो खून का फव्वारा निकला। एक! दो! तीन! आँख मीचकर रसीद किये, और उसने जो रूल पकड़ा तो मैं भूखी सिंहनी का भाँति उसके गले में हाथ देकर लिपट पडी इस जोर-शोर के साथ कि उसकी कमीज फाड़ डाली और उसे कुरसियों में घुसेड़ दिया। परन्तु पुरुष ही होता है। मेरे शरीर में न जाने कहाँ से बल आ गया था। वह सँभल गया। क्रुद्ध होने के स्थान पर हँसने लगा और मेरे प्रत्येक आक्रमण को अपने बलिष्ट हाथों से रोक दिया। मेरा हाथ पकड लिया। मैं पूरी शक्ति से झटके पर झटके दे रही थी कि उसने मज़बूती से मेरी कमर पक

ली। मैं पागलों की तरह सिर मारने लगी, उसका मुँह नोच डाला हाथ खरोंच डाले और ज़ोर मारते हुये कहा—"मैं तेरा खून कर डालूँगी।"

उसने एक झटके के साथ मुझे अलग किया और हाथ जोड़ कर कहा—"ज़ालिम! मैं तेरा कुसूरवार हूँ, चाहे जैसे मार डाल; कसम है तुझे भी! मै तेरे बिना जिन्दा नही रह सकता, चाहे जैसे मार डाल!"

मेरा जोश और गुस्सा हिरन हो गया, बल्कि सिर का खून देख कर मै सिहर सी गई। सिर पकड़ कर अलग होकर बैठ गई। मुझे रोना आ गया और मै हार कर यहाँ से उठ कर भागी ही थी। कि लपक कर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और जब मैंने हाथ छुड़ाया, तो मेरे दोनों पैर पकड कर लिपट गया। "कमबख्त छोड़ मुझे..." मैंने कहा।

"पहले मुझे मार तो डाल...तब जाने दूँगा। यह कह कर मेरे पैर की पकड और कड़ी की।

"बिना मेरी जान लिये नहीं जा सकती—मै तेरे बिना जिन्दा नही रह सकता, मैं तुझे नही छोड़ूँगा..."

या मेरे खुदा! मै कैसे छुडाऊँ। घबराहट मे रोना भी भूल गई। "अरे मुझे जाने दे छोड खुदा के वास्ते!"

अब मे रह-रह कर दोनो हाथों से उसकी पकड़ छुडाती हूँ, पर निष्फल। मेरा रोना बन्द हुआ और मैंने खुशामद शुरू की। मैंने सोचा कि छूट जाऊँ किसी प्रकार, तो फिर इसे मारने पीटने का विचार ही त्याग दूँगी। मै ऐसा बदला लेने से बाज आई। यह तो उलटा जान के पीछे पड गया। मै व्यर्थ आयी, यह दुष्ट तो उलटा लिपट गया। सचमुच मैंने सिर फोड दिया उसका। वह मेरे दोनो पाँव बडी मजबूती से पकड़े हुये था, और उसका सिर मेरे पाँव से ऐसा चिपका था कि छुड़ाये नहीं छूट रहा था। मै भला कभी काहे को ऐसी झंझट में फँसी थी। हद से ज्यादा घबरा कर अब मैंने कहा—"छोड मुझे खुदा के वास्ते, तुझे खुदा और रसूल का वास्ता! मुझे छोड..."

उसने छोड़ दिया जल्दी से और एक करुण स्वर मे कहा—"मैंने तुझे तलाक दिलवाया और मैं तेरे बिना जिन्दा नही रह सकता। मैंने कोई जुल्म नही किया। खड़ा हूँ तेरे सामने, चाहे मार डाल, पर मैं तुझे हरगिज न छोड़ूँगा।"

मै तेजी से बाहर चली। उसने विनय करते हुये हाथ पकडा। मैंने झटक दिया। उसने कहा—"जवाब देती जाओ।"

पर मैंने कोई उत्तर न दिया। केवल इतना कहा—"मुझ गरीब का घर बिगाड़ा।" मेरा दम घुट गया। तेजी से हाथ झटक कर मै निकल गई। मुझे रोना आ रहा था। जल्दी से अहाते के पास पहुँची, तो घूम कर मैंने देखा और उसको भी आँसू पोंछते पाया।

उसका नाम मुस्तफा था। मैंने घर से निकलना छोड़ दिया था, लेकिन वह मोटर लेकर, सामने का सड़क पर से दो बार अवश्य निकलता—नियमित रूप से निश्चित समय पर। मैंने अभी किसी से चर्चा न की थी और सोच रही थी कि बेगम साहिबा से कहूँ भी अथवा नहीं। मैंने बहुत सोचा, पर कहने का साहस न हुआ। यहाँ तक कि मेरी इद्दत (सोग के चार महीने दस दिन) के दिन समाप्त होने को आये। मुझे कोई सलाह देने वाला नही था। बेगम साहिबा के बूढे बबर्ची, जिनको मै 'बड़े मियाँ' कहा करती थी, मेरी ताक में थे। उनके अतिरिक्त मेरा नाते का जो देवर था, वह बराबर आता रहता था, और ले-दे कर अब मेरे सामने एक वही सहारा था। पर मैं जानती थी कि होने वाला कुछ और ही है, और वही हुआ।

मुस्तफा का पागलों का सा प्रेम मैंने कम क्या, बिलकुल नहीं देखा था। इद्दत बीतने के बाद मै निकली। वह शायद इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मुझे सडक के किनारे से बुलाया। मै उसके साथ गयी। मैं कैसे चुप रह सकती थी? जिसने मेरा घर बिगाडा उसको योंही

छोड़ दूँ हम दोनों कमरे में गये, बातें हुई, मेरी सारी शिकायतें उसे मान्य थीं और उसका प्रायश्चित भी सम्भव था, लेकिन...

लेकिन मैंने स्पष्ट कह दिया कि रईसों और गरीबों का साथ क्या ! बाप से छिप कर शादी करना और फिर किसी तरह की आशा रखना व्यर्थ बात है। अतः मैंने अपनी शका प्रकट कर दी कि आगे चल कर क्या होगा। मुझे इसका विश्वास कैसे हो कि मैं निकाली न जाऊँगी ? खाली वायदा और प्रेम का बन्धन कोई चीज नहीं। माली खाला का उदाहरण सामने था, और फिर मैंने अपने तलाक से भी शिक्षा ग्रहण कर ली थी। मुझे वे उपाय मालूम थे, जिनसे मेरा पल्ला भारी हो सकता था। मेरे तलाक के अवसर पर लोगों से सब मालूम हो गया था। अतएव पहली शर्त तो मैंने यह रक्खी कि मेरा महेर भारी रक्खो।

आपको कुछ महेर के बारे में भी बता दूँ। महेर उस रकम का नाम है, जो मुसलमानों में पति की ओर से पत्नी को ऐसे अवसर पर देने का वचन दिया जाता है, जब उसको इसकी आवश्यकता हो। जैसे पति मर जाय, तो पत्नी को अधिकार होता है कि वह उसकी जादाद से वसूल कर ले, या यदि पति सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहे, तो पत्नी को महेर की रकम दे दे, जिसमें कि स्त्री को आर्थिक कष्ट न हो। धर्म के अनुसार यह रकम बहुत कम होनी चाहिये, इतनी कि पति तुरन्त अदा कर सके, लेकिन अब चूँकि उस रकम के द्वारा पति को फसाना रहता है, अब इसलिए महेर भारी-भारी बँधता है। धनवान लोग शान के लिये भी यह रकम भारी-भारी रखते हैं।

हाँ तो मैं शायद पाँच हजार के महेर को कहती, किन्तु वह स्वय बोल उठे कि "मेरे भाई का एक लाख है, वही मैं तुम्हारा रख दूँगा।" वास्तव में मुस्तफा का इरादा सच्चे दिल से मुझे इज्जत और मान के साथ अपनी विवाहिता पत्नी के रूप में रखने का था और वह प्रेम में उन्मत्त था।

दूसरी शर्त मैंने यह की कि मुझे सौ रुपये महीने का काग़ज हाथ खर्च के लिये लिख दो। इस पर भी वह राजी हो गये। उनसे अकेले में बातें हुई। मुस्तफा ने वकील साहब से सच्चे दिल से कहा— "आप सचमुच ऐसी सलाह दें कि जहाँ तक हो सके, मैं अपनी बीबी के कब्जे में रहूँ, नही तो खुदा के यहाँ आप इसके जिम्मेदार होंगे।"

वकील को क्या इन्कार हो सकता था। उन्होंने फीस ली और राय दी कि हाथ खर्च का और महेर के कागज रजिस्ट्री करा दिये जायँ। अतः उसी दिन दोनों कागज राजिस्ट्री हो गये, और रात को मेरा निकाह हो गया।

* * *

मैंने अपने भोले-भाले पति को कैसा पाया, बस यह समझिये कि उनकी प्रशंसा के लिये मेरे पास शब्द और जबान की ताकत, दोनों की कमी है। बाप तीन सौ रुपये महीना देते थे। पढता कौन मसखरा था? न जाने क्या बहाना करके बाप से एक हजार रुपया और मँगा लिया. कुछ रुपया डाकखाने में था। और मेरे लिये भाँति-भाँति के रेशमी कपड़े, साड़ियाँ और गहने तैयार हुये। यह निश्चय हुआ कि मैं पर्दा नहीं करूँगी। मै स्वय पहले ही से स्वतन्त्र थी। अब यह नित्य का कर्म हो गया कि शाम को हम दोनों ठाठ से कपड़े बदल कर मोटर पर हवा खाने जाते और इसी सैर के सिलसिले मे एक दिन मेरी मुलाकात एक ऐसी महिला से हो गई, जिनके मेल ने मेरा जीवन सुधार दिया। यह एक डिप्टी कलैक्टर की नवयुवती पत्नी थी, और मैंने उनको बहिन बना लिया। मेरा सारा हाल जब उन्होंने सुना, तो मेरी दोनों दस्तावेज़े अपने पास सुरक्षित रख लीं।

कालेज के प्रोफेसरों ने जब देखा कि एक छात्र, एक नौजवान लड़की के साथ इस आज़ादी से घूमता है और साथ रखता है, तो उनमें से एक पूछने को आये, लेकिन जब उनको मालूम हो गया कि मै मुस्तफ़ा की पत्नी हूँ, तो चुप हो रहे। लेकिन उन्होंने राजा साहब को लिख दिया, और मेरे विवाह को मुश्किल से तीन महीने बीते होंगे कि तूफ़ान आ गया।

राजा साहब यानी मुस्तफा के पिता पीलुवा के ताल्लुकेदार थे। उनके दो लड़के थे। एक तो मुस्तफा, दूसरे अहमद। अहमद का विवाह किसी बड़े रईस की लडकी से हुआ था, और उस लडकी की छोटी बहिन मुस्तफ़ा की मँगेतर थी। स्पष्ट है कि मेरे विवाह के समाचार ने पीलुवा में क्या ग़जब न ढाया होगा। अहमद शायद कही बाहर गये थे। राजा साहब पीलुवा में मौजूद थे, और यह खबर सुनते ही उन्होंने चुपके से किसी दूसरे आदमी से इस खबर की पुष्टि कराई, और पुष्टि होते ही वे आँधी और तूफान की तरह एक नौकर को साथ ले इधर दौड़े। हम दोनों को खबर भी नही कि तूफ़ान उठ पडा।

* * *

शाम का समय था। हम दोनों पति-पत्नी चाय पीकर उठे। मुस्तफा ने मोटर ड्राइवर को मोटर तैयार करने की आज्ञा दी और मुझसे बड़े प्रेम के साथ कहा कि जल्दी से कपडे पहिनो। दरअसल आज कुँवर साहब अपनी पसन्द के रेशम की एक कीमती शलवार मेरे लिये बनवा कर लाये थे। मैं समझ गई। कपड़े बदले और रूमाल पर इत्र डाल रही थी कि बाहर गदर सा हो गया।

या खुदा! मेरी आँखें, यह क्या देख रही थीं! मोटर के पास ही पचास वर्ष की आयु का एक प्रौढ़ व्यक्ति मुस्तफा के सिर पर जूते लगा रहा था! ऐसे कि मै देखते ही दहल गई। उसकी डपट थी कि गरज!

यह मुस्तफा के पिता थे, और देखते ही देखते उन्होंने पचास जूते झाड़ दिये, और जूता हाथ में लिये गरज कर बोले—"निकाल अभी उस चुड़ैल को !······" एक जूता और दिया—"निकाल ·· ··नालायक, बदमाश······"

और दोनों बाप बेटे साथ-साथ, बेटा अपनी चाँद पर हाथ की ढाल रक्खे मेरी ओर आ रहे थे ! हर कदम पर बाप गरज कर कहता था—"निकाल उसे ··"

वही समस्या सामने थी कि 'ताजी पिटे, तुर्की थर्राये !' मेरे हवास गुम ! या खुदा, मैं क्या करूं ! पर नहीं, एकदम से मैंने अपने अन्दर एक विचित्र शक्ति का अनुभव किया। माली मौसी की भूल मेरे सामने थी। मुझे कौन निकाल सकता है, मुझे साहस से काम लेना पडेगा। क्या ताज्जुब कि जब मै सारा हाल सुनाऊँ, तो स्वय राजा साहब भी अगर जरा इन्साफ से काम ले, तो फैसला मेरे पक्ष में हो जाय।

पर सोचने का मौका कहाँ ? "किधर है ··?" यह कह कर वे कमरे के भीतर आ गये।

मै यह कहना भूल गई कि विवाह के बाद हम एक दूसरे बङ्गले में आ गये थे, जो हर प्रकार की बस्ती से अलग था।

राजा साहब ने कमरे मे प्रवेश किया, तो मैंने झुक कर सलाम किया। जवाब देने के बजाय, उन्होंने मेरी ओर भयानक दृष्टि से देखा।

"तू कौन है ?" उन्होंने अत्यधिक क्रोध में आकर मुझसे पूछा।

मैंने धीरे से कहा—"अगर आप इतमीनान से मेरा किस्सा "

में किस्से-कहानियाँ सुनने नहीं आया हूँ ·····तू मामा की लडकी है ·"

"जी हाँ, मेरी माँ ··"

"अच्छा, तो निकल यहाँ से।"

"पहले मेरी बात सुन लीजिये।"

"तेरा मियाँ कालेज का बैरा है?"

मैने कहा—"उसने मुझे तलाक दे दिया इन्होंने (मुस्तफा की ओर सकेत कर के) उसे पाँच सौ रुपये "

इस अवसर पर तड़ से मुस्तफा के मुँह पर उनके बाप के हाथ का थप्पड़ इस जोर से पडा कि मुँह चर्खी का तरह घूम गया। राजा साहब बोले—"गफूर, निकालो सब सामान···अभी सब अपने कब्जे में कर लो, मगर इसे तो पहले ही निकालो···

गफूर नौकर ने मेरी तरफ एक कदम आगे बढ़ कर कहा—"निकल यहाँ से···"

मेरे सारे शरीर में आग लग गई। मैंने कहा—"हरामखोर, तू कौन है मुझसे बदजबानी करने वाला?"

मेरा यह कहना था कि ललकार कर राजा साहब बोले—"निकालो इस हरामजादी को।"

उधर गफूर बढा है मेरी तरफ, और इधर मैने लिया हाथ में टेनिस का बल्ला। मगर दो हाथ भी न लगाये थे कि दुष्ट नौकर ने मुझे हाथ पकड़ कर जो घसीटा है, तो मैने उसका मुँह नोच लिया। मुस्तफा को कोसने देती हूँ, पर बाप के सामने भीगी बिल्ली बना, नामर्दों की तरह मेरी बेइज्जती देखता रहा। मैने गफूर की नकसीर फोड़ दी और मुँह नोच लिया, लेकिन वह जालिम भी बड़ा ही निर्दयी था। उसने मुझे मारना शुरू किया और इस बुरी तरह मारा कि मैं बिल-बिला उठी, और राजा साहब ने देखते-देखते धक्के देकर मुझे बङ्गले से बाहर निकालवा दिया। जरा सोचिये कि मेरे यह कपड़े और यह गति! फिर गफूर ने मारा इस बुरी तरह था कि मै मार ही के भय से सहम

रही थी। लेकिन प्रश्न यह था कि करती क्या ? जान पर खेल कर और तीर की तरह झपट कर एकदम से मैं फिर बँगले में घुस गई और सीधी मुस्तफ़ा पर गिरी, और उसका कोट पकड़ कर इस तरह लिपट गई कि ग़फ़ूर ने मुझे उधेड़ कर डाल दिया, पर मैंने न छोड़ा। और धिक्कार है उस निर्लज्ज पति को कि मूर्ति बना खड़ा था। मैंने जमीन पर गिर कर मुस्तफ़ा की टाँगें पकड़ लीं। अब मजा देखिये कि राजा साहब मुस्तफ़ा को मार रहे हैं, और नौकर मुझे। पर मैं भला हारने वाली थी ? जानती थी कि हार और जीत की लड़ाई है, और मैंने सोच लिया था कि चाहे मुझे मार डालें, पर मैं न छोड़ूंगी। मैं चिल्ला रही हूँ कि राजा साहब, मेरी बात सुन लीजिये, पर वह हैं कि मानते ही नहीं।

राजा साहब ने अब आज्ञा दी कि मुझे कोठरी में बन्द कर दिया जाय।

मैंने राजा साहब से कहा—"मैं अभी जाती हूँ, मेरी एक बात सुन लो...अभी जाती हूँ।"

राजा साहब राजी हो गये, और मैंने कहा—"आपके लड़के ने मेरे अनजाने में मेरे आदमी से मुझे तलाक दिलवा दिया..."

बात काट कर राजा साहब बोले—"हटाओ चुड़ैल को !"

मैं तो छूटी खड़ी थी। "तेरे राजा और राजा के बच्चे की..." तू होता कौन है !" मैं जूती लेकर बढ़ी—"निकल मेरे घर से..."

गफ़ूर दौड़ पड़ा मैं राजा साहब के ऊपर दौड़ पड़ी, और ग़फ़ूर और राजा साहब दोनों के तड़ातड़ चारपाँच जूते उड़ा दिये; और सच-मुच बिखर कर रह गई। पर गफ़ूर और एक और नौकर ने मुझे घसीट

कर कोठरी में बन्द कर दिया। मार का अनुमान करना आसान है। मुझे बहुत और बुरी तरह मारा।

*　　　*　　　*

अब मैं तो कोठरी में बन्द सिर फोड़ रही हूँ, और बाहर यह कार्यवाही हुई कि मुस्तफा को तो राजा साहब मोटर में बैठा कर एकदम से दिल्ली पहुँचे, और सारा सामान एक कमरे में बन्द कर के एक मजबूत ताला डाल कर कुञ्जी अपने साथ लेते गये।

हमारे तीन नौकर थे। एक मोटर की सफाई पर था, एक रसोइया था और एक लड़का था। इन तीनों का हिसाब कर के राजा साहब ने निकाल दिया और ताला बन्द करने के बाद मुझे खोल दिया। मुझे राजा साहब के नौकर गफूर ने खोला और मुझे बडा ताज्जुब हुआ, जब गफूर मुझे देख कर कुछ नर्मी के साथ पेश आया। उसने मुझे बताया कि राजा साहब देहली गये, और इसके बाद उस गफूर साहब ने अपनी कृपा शुरू की। बहुत जल्द मैं मतलब समझ गई और मैंने उससे कहा—"अच्छा हो कि तुम अपना मुँह काला करो, नही तो तुम्हारी शामत आ जायगी।" लेकिन मेरे इतना बिगडने पर भी वह मुझे समझाते और उपदेश देते हुये मेरे साथ बेगम साहिबा की कोठी तक आया, और यह समझ कर कि मैं अपने स्थान पर नहीं पहुँची, उसने साफ-साफ शब्दों में अपने निकाह का प्रस्ताव उपस्थित कर ही दिया। जवाब में मैंने जहाँ उसकी नाक और मुँह पर दर्जनों थप्पड दिये थे, एक ओर रसीद किया और लपक कर घर में घुस गई।

बेगम साहिबा का इतने दिनों मेरे साथ अत्यधिक ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार रहा था कभी सीधे मुँह बात न की थी, और मुझे देख-देख कर जली जाती थीं। आज जो इस हाल में देखा, तो सचमुच जैसे प्रसन्न हो गई। बड़ी सहानुभूति प्रकट करती हुई बोली—बेटी, तू भी तो हाथी से गन्ना लेने चली थी।" और फिर बजाय कुछ सहायता आदि का

वायदा करने के वही पुरानी रट—"बेटी, घर तेरा है, जैसे तू पहले रहती थी, अब भी रह।"

मैने जो अपनी जान देने और लेने का विवरण सुनाया तो इतने ही में माली मौसी भी आ पहुँची, और बेगम साहिबा ने व्यंग्य से कहा—"एक माली ने अपनी जान दे दी और ले ली' और एक तू, अपनी जान दे देगी और ले लेगी।"

मैं क्या कहती ? खून का घूँट पीकर रह गई ! मन में मैंने अवश्य कहा कि जो करूँगी वह खुद सामने आ जायगा। लेकिन माली मौसी के व्यंग्य-बाण मेरे लिए असह्य थे। कहने लगीं—"बेटी, आसमान का थूका मुँह पर आता है! देख लिया न तूने। बड़े बोल का सिर नीचा !"

क्या करती मैं भी। कह दिया मैंने जल कर—"माली खाला, घबराओ मत, जो होने वाला है, सो देख लोगी।"

अब मुझे अपनी सबसे बडी भूल का अनुभव हुआ। किसी समय मेरे हाथ में हजार रुपये से अधिक थे। मैं नहीं जानती थी कि एक दिन यह झगडा होने वाला है। अब मुझे खयाल हुआ कि मुझे दो चार सौ अपने कब्जे मे रखने चाहिये थे। हद हो गई कि मेरा तमाम गहना भी गया। कोई एक हजार के तो गहने ही थे। भाग्य का खेल देखिये कि जिस समय विपत्ति आयी, गहना मेरे शरीर पर भी न था। कान मे बुन्दों की जोडी थी, हाथ में एक अँगूठी और कलाई पर घडी थी। घडी मार-पीट में न जाने किधर गयी। मुश्किल से सौ रुपये का माल रह गया था। अब प्रश्न यह था कि मुझे क्या करना चाहिये। पीलुवा किधर है ? किधर से होकर मार्ग है ? राजा साहब कुँवर साहब को लेकर किधर गये ? यह समस्यायें उपस्थित थीं; और यह कि अब क्या करूँ ? मेरा कोई साथी या सहायक नहीं था; और इधर मेरा यह हाल कि दुख और क्रोध के कारण खाना-पीना छूट गया। मन की

बात किसी से कहती ही न थी, पर सुनने वालियाँ अपने व्यंग्य-बाणों से हृदय को चलनी किये देती थीं। अभी दिन ही कितने हुये थे, जो मोटर पर उडी-उड़ी फिरती थी और माली मौसी के कथनानुसार 'जमीन पर पैर न धरती थी।' और अब यह कि तबाही और बरबादी, और वही बेगम साहिबा की सेवा! फिर मजा यह कि निकाह के सन्देशों की भरमार, मानो मेरा निकाह हुआ ही न था।

मैंने महीने भर प्रतीक्षा की। गफ़ूर जा चुका था क्योंकि मै घर से बिलकुल नहीं निकलती थी। निकला ही नहीं जाता था। महीना बीतने के बाद मैंने अपने बुन्दे और अँगूठी बेची, जिससे एक सौ बत्तीस रुपये मिले। मैंने पचास रुपये तो अपने साथ लिये और एक जोड़ा मोटे कपडो का मामाओं का सा बनवाया, और हर आदमी के मना करने पर भी बाकी रुपया बेगम साहिबा के पास जमा करके चल दी पीलुवा को।

* * *

खास पीलुवा था स्टेशन से कोई दस मील पर। सौभाग्य से मुझे गाड़ी मे एक स्त्री से मालूम हो गया कि राजा साहब अपने छोटे कुँवर सहित देहरादून में हैं, और उनकी कोठी 'पीलुवा हाऊस' कहलाता है। अतएव दूसरी गाड़ी से मैंने देहरादून का रुख किया।

देहरादून पहुँच कर मुझे पीलुवा की कोठी खोजने में कुछ भी कठिनाई न हुई। मैंने दूर से ही खड़े होकर देखा, जिसमें कि कोई मुझे देख न ले, और अब मुझे यह चिन्ता हुई कि किस प्रकार अपने मियाँ को ले उड़ूँ। रात को मोटर के अड्डे के पास रही और दिन को कोठी के फाटक पर दूर ही से नजर लगाये देखती रही। मोटर निकलती, तो दोनों बाप-बेटे साथ होते। तीसरे दिन मैंने देखा कि राजा साहब मोटर पर अकेले गये। उधर वह गये और इधर मै लपकी कोठी में। जिधर

नौकर रहते थे, उसकी दूसरी ओर अहाते की नीची सी दीवार फाँद कर उतर गई। बाग घना था, मुझे किसी ने न देखा। पेड़ो की आड़ में से होकर मैं पीछे के बरामदे की ओर आयी। गुसलखाने का दरवाज़ा खुला हुआ था, और मैं झट से उसमें घुस गई और भीतर बराबर के कमरे में दृष्टि डाली। कोई नहीं था। जल्दी से बढ कर दूसरे और तीसरे कमरे को देखा सब कमरे खाली थे, अतः मुझे विश्वास हो गया कि ऊपर होगा। अतएव कमरे में से झाँक कर देखा, कोई नहीं था। मैं लपक कर सीढ़ी पर पहुँची। सीढी का दरवाजा बन्द कर दिया, जिसमें कि कोई नीचे से न आ सके, और कमरे में पहुँची। वह खाली था। धीरे से मैंने बराबर वाले कमरे मे झाँक कर देखा। क्या देखती हूँ कि 'मुन्शी जी' एक आराम कुरसी पर बैठे सिगरेट का धुआँ छोड रहे हैं।

उन्हें देखते ही मेरे दिल में एक दर्द सा उठा। ऐसा कि आँखों मे आँसू भर आये। दुनिया उसको मुझसे छुड़ाने पर उतारू थी। असम्भव! धीरे से बढी और दौड कर मैने दिया एक दो-हत्तड़। बेहया! .....इसके बाद ही हम दोनो मिल कर रो रहे थे।

मैंने बहुत लज्जित किया यह कह-कह कर कि तुमने मुझे अपने सामने नौकर से पिटते हुए देखा, डूब मरो चुल्लू भर पानी में! धिक्कार है तुम्हारे ऊपर! पर मैंने माफ किया और अब यह कि चलो मेरे साथ। पूछने लगे—"कहाँ?"

मैंने कहा—'जहन्नुम मे! याद रक्खो, घास खुदवाऊँगी तुम से, पर छोडूँगी नहीं! और अब जो तुम्हारे बाप पड़े बीच में, या तो उनकी जान नहीं या मेरी जान नहीं! लो, अब उठो!"

फिर उन्होंने कहा—"कहाँ चलूँ? मेरे पास तो पैसा नहीं है!"

मैंने कहा—"पैसा गया जहन्नुम में, भीख माँग खायेंगे हम तुम पर चलो मेरे साथ! मैं तुम्हें कमा-कमा कर खिलाऊँगी, लेकिन छोडूँगी नहीं तुमको, चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाये। उठो जल्दी!"

कहने लगे—"मेरी समझ में नहीं आता। एक पैसा नहीं, कहाँ चलें।"

मैंने कहा—"कुँवर साहब, तुम जानते हो, मैं वही हूँ कि तुम्हारा खून करने पर तुल गई थी। उस वक्त तुम मेरे लिये पागल थे, और अब मैं तुम्हारे लिये हूँ। जमीन में भी घुस जाओ, तो ढूँढ लाऊँगी। होश की बातें करो, पहले तो रुपये की जरूरत नहीं, और अगर है तो मुझे बताओ, राजा साहब रुपये कहाँ रखते हैं? उठो सीधी तरह जो पैसा बड़े मियाँ का हाथ आये, कब्जे मे कर लो और चलो।"

सहसा खयाल आ गया। कहने लगे—"रुपया तो आलमारी में रखते हैं।" हम दोनों नीचे पहुँचे। सब कमरे बन्द ही थे। आलमारी का ताला मामूली था। दो-तीन कुञ्जियाँ लगाईं और खुल गया। दो सौ रुपये के नोट थे, जो तुरन्त कब्जे में किये। चारों ओर देख कर मैं जिधर आयी थी उसी तरफ से कुँवर साहब को निकाल ले गई, और फिर जो हम वहाँ से भागे हैं, तो लखनऊ आकर दम लिया, और वहाँ पहुँच कर मैने हिम्मत कर के कहा—"चलो पीलुवा।"

हमारी तरकीब वास्तव में यह थी कि पीलुवा से भी जो रुपया-पैसा हाथ आये उसे लेकर भागें। 'मोम की नाक' उस समय मेरे हाथ में थी। मैं जानती थी कि राजा साहब कभी सन्देह भी न करेंगे कि हम पीलुवा पहुँचेंगे। वे सीधे अलीगढ दौड़ेंगे। लखनऊ से मैंने एक और चाल चली। राजा साहब के नाम से रानी साहिबा के नाम यह तार दिलवा दिया कि "मुस्तफा को पीलुवा पहुँचते ही अलीगढ़ पढने को भेज दो।" मैं तो स्टेशन पर छिपी रही और कुँवर साहब को सिखा-पढा कर पीलुवा भेजा, और खूब समझा दिया कि याद रक्खो, अगर चाल चले मेरे साथ तो खैरियत नहीं तुम्हारी। यद्यपि इसकी कोई जरूरत नहीं थी। कम से कम उस समय। अतः कुँवर साहब सीधे घर पहुँचे। बड़े कुँवर साहब अपनी ससुराल में थे! अब मजा देखिये कि राजा साहब अलीगढ पहुँचे। वहाँ बेटे का पता न चला, तो अब घर

तार देकर पूछते हैं कि मुस्तफा कहाँ है ? तार कुँवर साहब के ही हाथ पड़ गया उन्होंने तार को तो रक्खा जेब मे और माँ से पाँच सौ रुपये ले कर बाप को अलीगढ़ बड़े भाई के नाम से तार दे दिया कि मुस्तफा यहाँ है। इसके बाद रुपया लेकर हम दोनों अलीगढ़ रवाना हुये, और राजा साहब अलीगढ से पीलुवा। रास्ते में न जाने किस जगह हमारा क्रॉस' हुआ होगा। अलीगढ़ पहुँच कर मैने कुँवर साहब से कहा कि अब मैं तो छिपी जाती हूँ, और तुम राजा साहब को खत लिख दो कि मैं लापता हूँ और अब आप मुझे इतमीनान से पढने दें।

मैं बेगम साहिबा के यहाँ आयी। रुपया अपने क़ब्जे में किया। कुँवर साहब प्रिंसिपल साहब से मिले और समझा-बुझा कर राजा साहब को सिफारिश का खत लिखा दिया। मुझे लापता बता दिया। इतने मे पीलुवा से राजा धोखा खाकर, आग बबूला हो अलीगढ़ वापस आये; लेकिन बेटे ने बाप को राजी कर लिया! बेटे का केवल यही कहना था कि मै अपनी पढ़ाई के लिये चोरी करके भागा और मुझे चाहे मार डालिये, पर पढ़ना नहीं छोड़ूँगा! रह गई मैं, तो मुझे कह दिया कि न जाने कहाँ गई। राजा साहब बेटे से प्रसन्न हो गये और पन्द्रह-बीस दिन रह कर, हर तरह राजी होकर, समझा-बुझाकर और एक नौकर अपने भरोसे का छोड़ कर हर प्रकार से सन्तोष कर के चले गये। और जिस दिन राजा साहब गये हैं, उसी दिन हमने राजा साहब के जाने की खुशी में कोई तीस-चालीस मील मोटर पर सैर की। पहला काम यह तय हुआ कि घर के नौकर को बुला लिया जाय और फिर रहे ठाठ से। बेगम साहिबा को बिलकुल खबर नहीं थी कि क्या मामला है। मैं बराबर उसी वेष में घर का कार्य चुपचाप कर रही थी। रुपया मैने डाकखाने में जमा करा दिया था।

कुँवर साहब ने नौकर को दो दिन मे मिला लिया। तनख्वाह दूनी कर दी; और तीसरे ही दिन मैंने बेगम साहिबा को सूचित किया कि

मैं जाती हूँ। वे चकित होकर बोली—"अरी मुर्दी किधर ?"

मैंने कहा—"अपने मियाँ के पास।"

यह कह कर उनको सब किस्सा सुनाया। मैने देखा कि बेगम साहिबा कुछ कसमसा कर रह गई। कहने लगीं—"देख, आग से खेलती है!"

मैं ऐसी बातों पर कब ध्यान देती थी ? बङ्गले में पहुँची, और अब यह निश्चय हुआ कि मैं बाहर ही न निकलूँ कि कोई देख सके। अपना रहना-सहना मैंने, एक बिलकुल ही अलग कोठरी में रक्खा, और स्वयं भी जहाँ तक हो सकता था, उसी में रहती थी।

* * *

अब मुसीबत देखिये। बड़े मजे से कट रही थी और सन्देह तक न था कि मामला कुछ गड़बड़ है। न कोई खैर, न खबर। कुँवर साहब कालेज गये हुये थे। मैं खाना खाकर अपनी कोठरी मे चारपाई पर लेटी थी और लडका पाँव दाब रहा था कि किसी ने दरवाजा खोला।

"कौन है ?" मेरे मुँह से निकला। राजा साहब झाँक रहे थे। मेरे पाँव तले की जमीन खसक गई। घबरा कर खड़ी हो गई। झुक कर सलाम किया जवाब मिलता है—"कमबख्त चुड़ैल"

अब मैंने सोचा कि मामला ऐसे न बनेगा। दौड कर राजा साहब के पाँव पकड लिये और मैने कहा—"हुजूर, सरकार! सिर्फ पाँच मिनट माँगती हूँ। आपकी लौंडी हूँ। खुदा के लिये सुन लीजिये. आपको रसूल का वास्ता! सुन लीजिये। मेरे ऊपर रहम कीजिये और सुन लीजिये।"

बड़े मियाँ राजी हो गये। मैंने उन्हें कुरसी पर बैठाया और हाथ जोड़ कर कहा—"मैं खतावार हूँ, जलील हूँ, आपके नौकरों के लायक़ जरूर हूँ! अगर इजाजत हो तो कहूँ?"

बोले—"क्या?"

मैंने कहा—"मै गरीब की लडकी, आपके कुँवर साहब ने खाह-मखाह मेरा घर बिगाड़ दिया। मेरे मियाँ को पाँच सौ रुपये देकर मुझे तलाक दिलवा दिया। क्या यह जुल्म नहीं?"

"उसकी नालायकी·····फिर क्या मतलब?" राजा साहब बोले।

"मतलब मेरा यह है।" मैंने हाथ जोड़ कर कहा—"आप राजा हैं, बड़े भारी रईस हैं, आपके लड़के ने मेरा घर बिगाड़ा, अब आप बताइये कि मैं खतावार हूँ या आपके कुँवर साहब? मेरी मिट्टी उन्होंने खराब की कि नही? इन्साफ कीजिये।"

"तेरी क्या मिट्टी ख़राब हुई, रुपये ले ले और छोड मेरे बेटे को।"

मैंने कहा—"सच कहा आपने, खुदा आपका भला करे। मुझे एक लाख रुपये दिला दीजिये, बस, मै आपके कुँवर साहब को छोड़ दूँ।"

"एँ!" राजा साहब ने हाँफ कर कहा—"एक लाख?"

मैंने कहा—"जी, एक लाख मेरा महेर है। जी चाहे काज़ी का रजिस्टर देख लीजिये, और जी चाहे रजिस्ट्री के काग़ज़ देख लीजिये।"

राजा साहब ने बिगड कर कहा—"मालूम होता है, तेरी अक़्ल ठिकाने नहीं है। पाँच सौ रुपये देता हूँ, छोड़ मेरे लड़के को, नहीं तो याद रख कि..."

मैने कहा—"जनाब, आप मेरे बुजुर्ग हैं और मै आपकी लौंडी। जो आप तलाक दिलवाये तो मै महेर का दावा करके ले लूँगी, और जो आप यह चाहें कि बिला तलाक के मेरे मियाँ को मुझसे छुड़ाये, तो आपकी लौंडी, खुदा चाहेगा तो अपने मियाँ को दुनिया के किसी भी पर्दे मे छिपा कर रक्खें, नहीं छोड़ेगी! चाहे जान रहे, चाहे जाय। आगे आपकी मरजी!"

राजा साहब बोले—"तो अच्छा है कि तू निकल यहाँ से। निकल अभी।

मैंने माथे पर बल डाल कर चाकू उठाया, जो मैने अभी-अभी सेब काट कर रक्खा था, और खूनी आँखे बना कर कहा—"निकलो यहाँ से सीधी तरह!" और जो बढी हूँ जरा सा, तो राजा साहब सचमुच भागते दिखाई पड़े और अब चाकू मेरे हाथ मे, और मैंने डपटा जोर से—"निकलिये आप यहाँ से!"

भाग्य का खेल, कि उनका नौकर बजार गया था, और मैने सच-मुच बडे मियाँ को खड़े-खड़े निकाल दिया और नौकर को दौड़ाया कि कालेज से कुँवर साहब को बुला लाये।

मगर बड़े मियाँ एक घाघ। नौकर से पहले जाकर उन्होंने बेटे को घर लिया और वहीं से जो फटकारना शुरू किया है, तो बङ्गले मे पीटते हुये घुसे, और हुक्म दिया अपने लड़के को कि मुझे निकाल दे। पर मेरे हाथ मे तो चाकू था, और मैने आँखे निकाल कर बाप-बेटे दोनों को बुलाया कि—"आओ, निकालो मुझे।"

अब जरा मेरे पति महोदय का हाल सुनिये। आप अपने पिता से कहते क्या हैं कि मैं उनके घर ज़बर्दस्ती घुस आयी और मार डालने को कहती हूँ, इसलिये वह बेचारे बेकुसूर हैं। इसका प्रमाण उनके सामने था।

मेरे तेवर देख कर बाप-बेटे दोनों लौट गये। अब मजा देखिये, कि बाप ने बेटे से थाने मे जाकर यह रिपोर्ट लिखाई कि मैंने एक आवारा औरत को बुलाया था, जो अब घर से नहीं निकलती और चाकू लिये खड़ी है। रुपये में बड़ी ताक़त है। मैं चिन्तित बैठी ही थी कि एकदम से चार कॉस्टेबिल आ गये। और अपमान की हद तो देखिये कि पति महाशय 'मोम की नाक' सामने खड़े हैं, और मुझे निकलवा रहे हैं। मै तो अपनी जान हथेली पर लिये ही हुये थी, पुलिस क्या, फ़ाज आ जाती। मै मरने-मारने पर तैयार थी। मैंने देखा कि मैं पकड़ी जाती हूँ, तो चाकू फेंक अपने पति को पकडने दौडी; लेकिन बीच में पुलिस ने ले लिया, और मैं रोती चिल्लाती और कोसती सीधी थाने के हवालात मे सिर फोड रही थी। या खुदा! मेरा कोई इतना भी न था, जो मुझे पुलिस के निर्दय हाथों से बचाता।

पुलिस वालो ने मुझे तीसरे दिन छोडा। मै जो बाहर निकल कर देखती हूँ, तो बङ्गला सुनसान। सब की असबाब भी गायब! कहाँ गये, क्या हुये, कुछ पता नही। अब मै फिर बेगम साहिबा के घर पहुँची, और मेरे लिए फिर उनके वही व्यंग्य-बाण थे, बल्कि बेगम साहिबा ने साफ़-साफ कह दिया कि अब तो मैं गई, तो फिर न आने देगी।

मैं कह चुकी हूँ कि मैंने अपना एक मित्र भी पैदा कर लिया था। यह डिप्टी साहब की पत्नी थीं। वह दरअसल अपने मायके गयी हुई थीं, और जिस दिन मैं यहाँ आयी, उसके दूसरे दिन वह आ गयीं। मैंने उनको अपनी विपत्तिकथा विस्तारपूर्वक कह सुनाई। उन्होंने मेरे प्रति न केवल सहानुभूति प्रकट की, बल्कि डिप्टी साहब के द्वारा प्रत्येक सम्भव सहायता का वायदा भी किया। लेकिन सवाल यह था कि यहाँ तो अब कोई था नही। मैंने डिप्टी साहब से कहा कि मै अभी लाती हूँ अपने मियाँ को यह कौन बड़ी बात है। मै सोचे हुये थी कि पति महोदय छिप कर जायँगे कहाँ?

दूसरे ही दिन मैं पीलुवा को चल दी। राजा साहब का स्टेशन पर कुछ पता न चला। मैंने एक कुली को दो रुपये देने कहे, और वह पता लगा कर आया कि राजा साहब छोटे कुँवर साहब के साथ शिकार को गये हैं और वहाँ से सीधे लखनऊ जायेंगे। मै लखनऊ जानेवाली थी कि रात को और ही मामला पेश आया।

* * *

रलवे स्टेशन के मुसाफिरखाने मे पड़ी हुई मै सुबह को गाड़ी का प्रतीक्षा कर रही थी कि रात के अन्धकार में किसी ने मेरे ऊपर छुरे से हमला किया। मेरे सीने और पेट में छुरे के तीन घाव लगे। मेरे मुँह से एक चीख निकली, और मुझे पता नही कि क्या हुआ। मै मूर्च्छित हो गई।

जब मेरी आँख खुली और चेत हुआ, तो मैंने अपने को एक अस्पताल में पडा पाया। शाहजहाँपुर का अस्पताल था, जो उस स्टेशन के बहुत निकट था, जहाँ मै घायल हुई थी।

मै खूब जानती थी मेरे ऊपर आक्रमण करने वाले कौन होंगे जैसा कि बाद मे मुझे पता चल गया। लेकिन जब पुलिस ने अस्पताल मे मेरा बयान लिया, तो मैंने कुछ न बताया कि मुझे किस पर और किस कारण सन्देह है। मेरे पास जो कुछ भी रुपये थे, वे सब मौजूद थे, जिससे सिद्ध होता था कि आक्रमणकारियों को सिर्फ मेरी जान लेनी थी।

बहुत शीघ्र मेरे घाव बिगड़ गये और हालत खराब हो गई। मेरे ने में इतना गहरा घाव लगा था कि बचने की कोई आशा न थी। ह घाव दाहिनी ओर था और पसली में से होकर करीब-करीब पीठ तक पहुँचा। दूसरा घाव इसके नीचे था, पर अपेक्षाकृत कम खतरनाक

था। तीसरा घाव पेट में लगा था, जिससे मेदा कट गया था। यह सब मुझे बाद में मालूम हुआ। घावों के बिगड़ जाने के कारण बेहोश करके मेरा 'ऑपरेशन' हुआ, और इस भयानक 'ऑपरेशन' से भी मैं बच गई। वास्तव में मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति और तन्दुरुस्ती ऐसी थी कि मैं इस संकट को झेल ले गई। राजा साहब यह समझते थे कि मुझे मार कर ठिकाने लगा देंगे; और मैंने अब यह सोचा कि ससुरे की जान न ली तो कुछ काम ही नहीं किया!

लेकिन यह तो अत्याचार की हद थी। अस्पताल में जब मैं पड़ी हुई थी, तो मुझे ख्याल भी न था कि मेरे साथ एक भारी जालसाजी की गई। एक कम्पाउण्डर को मिला लिया और मुझसे उसने एक कागज पर अँगूठे का निशान लिया, यह कह कर कि अस्पताल में लिखा-पढ़ी के लिये आवश्यकता है। मैंने कागज को देखा तक नहीं, और यह कागज राजा साहब के पास पहुँच गया, और उस कागज़ पर उन्होंने यह तहरीर लिखवाई कि मेरा निकाह, जो कुँवर मुस्तफा के साथ हुआ, उन्होंने परस्पर राजी-खुशी से मुझे तलाक दे दिया और मैंने अपने महेर का सवा दस हजार रुपये तय कर लिया, जो वसूल हो गया।

एक स्त्री हाकिम के सामने मेरे स्थान पर पेश हुई, जिसको द बेईमानों ने शिनाख्त कर दिया कि मैं यानी मुस्तफा की पत्नी हूँ। और उस स्त्री ने कागज की तहरीर को स्वीकार किया, और जहाँ मेरे अँगूठे का निशान था, उसको अपना बताया और दस्तावेज को हर प्रकार स्वीकार कर लिया। साराश यह कि अदालत की कार्यवाही में मेरे हस्ताक्षर से यह बात मान ली गई कि मुझे तलाक हो गया और मैंने महेर का मामला भी तय कर लिया।

लेकिन खुदा बड़ा मेरहबान है। जब तक मैं अस्पताल में रही, उस समय तक तो यह सम्भव नहीं था कि मेरी अस्पताल में भी हाजिरी

हो और लखनऊ की अदालत में भी। राजा साहब ने जब यह अदालती कार्यवाही कराई तब मुझे अस्पताल से निकले चौथा दिन था। मेरा सौभाग्य देखिये कि काकोरी के स्टेशन पर पुलिस ने मुझे आवारा-गर्दी के सन्देह में उतार लिया, और जिस दिन यह फर्जी तलाक की कर्यवाही पूर्ण हुई, उस दिन मै पुलिस की हिरासत मे थी। सम्भवतः राजा साहब के गुर्गों ने यह न देखा कि मै काकोरी मे उतार ली गई। मैंने पुलिस में अपना अलीगढ का, बेगम साहिब और डिप्टी साहब का हवाला दिया। पुलिस ने डिप्टी साहब को तार देकर मेरे विषय मे पूछा और मेरी तसदीक हो गई, तथा पुलिस ने मुझे छोड दिया। मैं सीधी लखनऊ पहुँची। अब यह तो निश्चित था कि राजा साहब लखनऊ मे ही हैं, किन्तु प्रश्न यह था कि कहाँ हैं ?

मै एक सराय में ठहर गई और पता लगाना शुरू किया। कोई आठ दिन हैरान रही, पर कुछ पता न चला। एक दिन शाम को मैं अमीनाबाद मे चली जा रही थी कि क्या देखती हूँ कि खुली हुई मोटर पर बाप बेटे दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। मै एकदम से लपकी, लेकिन मोटर निकल गई। मैने तुरन्त इक्का किया और मोटर के पीछे चली। इक्के वाले को मै ने एक रुपया देने को कहा, पर वह मोटर को न पकड़ सका। परन्तु उसने मुझसे कहा कि मुझे दो रुपये दो, तो मै तुम्हे उस मोटर के मालिक के मकान पर ले जाकर खड़ा कर दूँगा। वास्तव में उसने मोटर का नम्बर देख लिया था और दूसरे दिन न जाने किस तरह कचहरी जाकर खड़ा कर दिया और देख भाल कर मुझसे अपनी फीस पाँच रुपये माँगी। मै ने पाँच रुपये दे दिये, और उसने मुझे हजरतगञ्ज की एक कोठी के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि किसी और का बँगला है लेकिन मोटर उसी बँगले की थी। इक्के वाला अन्दर जाकर ड्राइवर से कुल पता लगा लाया। मालूम हुआ कि मोटर शाम को राजा साहब पीलुवा के यहाँ गयी थी और उनकी कोठी भी पास ही है। मैंने इक्के वाले

को तो बिदा किया और आधे घण्टे मे ही कोठी का पता लगा लिया।

* * *

दूर से एक नीम की आड़ में सड़क के किनारे खड़ी मैं कोठी को देख रही थी। छोटी सी दो मंजिल की कोठी थी। सामने सुन्दर बगीचा था। इमारत के पीछे अहाता खतम होता था। चुपके से प्रवेश करना असम्भव था। दूसरी मंजिल पर बराबर ही दो तीन कमरे थे।

मै तीन-चार घण्टे तक उसी जगह बैठी देखती रही, लेकिन कुछ दाॅव न चला। शाम के समय एक कमरे की चिक उठी; और कुॅवर साहब निकल कर बराबर वाले कमरे मे घुस गये। मेरी आॅखों में आॅसू भर आये। हृदय से एक दीर्घनिःश्वास निकली। अफसोस! इस बेमुरव्वत अमीरजादे ने मेरा जीवन कितना दुखमय बना दिया था! आह! मेरा कोई भी सहायक न था। पर नहीं, मैं स्वयं जो थी, और मेरा खुदा मेरा सहायक था! मैंने अपने मे एक शक्ति, एक अपूर्व बल का अनुभव किया। मैं उसे नहीं छोड सकती!

संध्या का समय था, और सर्दी बढ रही थी। बत्तियाॅ जल गईं, कमरों मे रोशनी जगमगाने लगी। मैं कोठी के बिलकुल ही निकट सड़क के किनारे खड़ी देखती रही। आने-जाने वालों को देख कर मुझे मालूम हो गया कि बाप-बेटे दोनों ऊपर रहते हैं। नीचे के कमरे शायद उठने-बैठने, मिलने-जुलने के लिए हैं। आगे के बरामदे के दोनों तरफ से दो सीढ़ियाॅ ऊपर को जाती थीं। बाईं ओर से जाओ, तो पहला कमरा कुॅवर साहब का था, और उस कमरे से मिला हुआ राजा साहब का कमरा जान पडता था। मैं देर तक देखती रही, फिर वापस आई यह सोचती हुई कि किस तरह भीतर प्रवेश करना चाहिये।

मे सराय मे निराश और असफल लौटी, तो मेरा हृदय अपने दुर्भाग्य पर भर आया, और खूब जी भर के रोई। लेकिन रोने के बाद मैंने अनुभव किया कि कोई शक्ति है, जो कह रही है कि कोई चीज मुझको मेरे अधिकार से वंचित नही कर सकती, पर शर्त यह कि मेहनत और साहस मे कमी न हो। विजय मेरी होगी, मै अपनी जान दुश्मनों की जान एक कर दूँगी।

रात को मैं कहाँ से कहाँ पहुँची। मुझे मालूम था कि मेरे जेठ यानी बडे कुँवर साहब की साली और मेरे पति की मँगेतर यहाँ लड़कियों की स्कूल में पढती हैं। अतः मैंने यह सोचा कि चल कर उसे भी बदहवास करना चाहिये। अतएव सुबह उठ कर मै सीधा स्कूल पहुँची और चूँकि उसके बाप का नाम जानती थी, अतः उसका पता लगाने मे जरा भी कठिनाई न हुई, और वह मुझसे मिली। मैंने उससे कहा कि मै एक जरूरी काम से मिलने आयी हूँ, और आपसे अकेले में मिलूँगी।

मेरे सामने एक सुन्दर और भोली-भाली रईसजादी थी—कोमलाँगी, रेशमी वस्त्र धारण किये हुये। ऐसे भड़कीली और चमकदार कि बस देखा कीजिये। अवश्य ही मुझसे अधिक सुन्दर थी। पर हुआ करे, मेरी जूती से! मुझे अपने काम से काम। अतएव हाथ जोड कर मैं बोली कि मैं एक गरीब लडकी हूँ, और यह मामला है। वह इसकी भनक पहले ही से सुन चुकी थी। मैंने उससे कहा कि मैं ही वह हूँ, और अब यह कहना है कि आप मेरे पति से विवाह-शादी का विचार एकदम त्याग दें, क्योंकि मैंने निश्चय कर लिया है यदि उन्होंने मुझे छोड़ दिया, तो मै उन्हें मार डलूँगी। और यह कह कर मैने उससे यह भी कह दिया कि हत्या की भूमिका के रूप में दोनो बाप-बेटे यानी राजा साहब और कुँवर साहब मेरे हाथों से पिट चुके हैं, और यह कह कर मैंने अपने सीने के

घाव का निशान दिखा कर कहा कि अब सिर्फ इसका बदला लेना है।

मैंने देखा कि बेचारी सिहर उठी। कहने लगी – "बहिन, तुम जाओ यहाँ से। मैं तो अभी पढ रही हूँ और फिलहाल मेरी शादी का कोई मामला पेश नहीं है। तुम जानो, तुम्हारा काम। रह गई मैं, सो कुँवर साहब क्या, मै किसी से भी नही कर रही हूँ, और न इरादा है।"

जवाब उचित था, और मुझको विश्वास हो गया कि कुछ भी हो, यह बात उसकी समझ में अच्छी तरह आ चुकी है कि कम से कम मै जब तक जीवित हूँ, उस समय तक उसको विवाह के दूसरे ही दिन विधवा होना पड़ेगा, इसलिए जहाँ तक हो सकेगा, वह यह नासमझी नहीं करेगी। और मै उसको धन्यवाद देती और दुआएँ कहती वहाँ से चली आई।

मै क्या बताऊँ कि उस कोठी में जाना मेरे लिए कितना कठिन हुआ। आठ-नौ दिन तक मं चारों ओर मँडराती रही, पर कोई मौका न लगा। और फिर दो-तीन बार तो मेरी उपस्थिति प्रकट ही हो चुकी होती, पर मै तो हर समय ताक मे लगी हुई थी। अतः एक दिन जब कि राजा साहब कुँवर साहब को लेकर रात को आठ बजे के लगभग कहीं बाहर गये, और बिजली की बत्तियाँ ऊपर और नीचे बुझ गई, और दो नौकर उतर कर अपनी कोठरियों की ओर चले गये, तो मै अहाते में इस प्रकार घुसी कि कोई देख ले, तो किसी से पूछने लग जाऊँ कुछ, और न देखे तो क्या कहना। अतएव सीधी बरामदे के पास पहुँच कर मैं तीर की तरह सीधी सीढी पर चढ गई और झट से कुँवर साहब के कमरे में चिक उठा कर घुस गई। कमरे में अँधेरा था और मैं बत्ती जला नहीं सकती थी। टटोल-टटोल कर चलने लगी। थोड़ी देर

में दिखाई देने लगा। कमरे से मिला हुआ एक छोटा-सा गुसलखाना था। कमरे के पीछे तीन खिड़कियाँ थीं। बाहर थोड़ी दूर तक मैदान चला गया था। फिर और इमारते थीं। कमरे में बीच मे चार कुरसियाँ बिछी थीं, और एक मेज थी। एक तरफ एक शानदार मसहरी थी। मै उस मसहरी के नीचे घुस गई और पलङ्ग के चादर को खूब नीचा कर दिया जिसमें कि कोई झुकने पर भी न देख सके और इतमीनान से लेट गई।

पर बहुत जल्दी मुझे सर्दी लगने लगी। मै नीचे से निकली और अपने पति का एक ऊनी 'स्वेटेर' पहिना और फिर गुडी-मुड़ी बनकर अपने हाथों में सिर छिपाकर पड़ रही और लगी प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनने।

* *

रात के कोई दो बजे होंगे कि सर्दी और बेचैनी के कारण मेरी आँख जो खुली है, तो मै घबरा गई कि अँधेरी तो देखिये कि कहाँ मेरी आँख लगी है। मिट्टी पड़े ऐसी नींद पर। धीरे से मसहरी के नीचे से मै रेंग कर निकली। कमरे में हरे रग का एक छोटा सा लट्टू टिम-टिमा रहा था कुँवर साहब अपने रेशम के लिहाफ में पड़े गहरी नींद में मस्त थे।

हरे रग का धीमा धीमा प्रकाश, भयानक परिस्थितियों में होकर मेरा यहाँ पहुँचना और उस बेवफा को इस प्रकार निद्रा में मग्न देखना। एक स्वप्न सी दशा थी। बेकाबू और बेचैन होकर मैने उस बेवफा और निर्दय पति के चेहरे की ओर झुक कर गौर से देखा और झुकी। दिल भर आया। आँखों से एकदम से गरम-गरम आँसू निकल कर उनके चेहरे पर गिरे, और मैने उनके माथे को चूमा और स्वयं

बैठते हुये अपना सिर उनकी छाती पर रख दिया। हड़बड़ा कर जाग उठे, पर शोर नहीं मचाया, बल्कि मुझे प्रेम के साथ छाती से लगा लिया। मेरे आँसू पोंछे, तुरन्त खता माफ कराई, लेकिन हद से ज्यादा बदहवास थे। "कहाँ से आई?...किधर से कैसे?..."

मैंने कहा—"तुम्हारी बला से, इन किस्सों को छोड़ो और उठो अब सीधी तरह से...और याद रक्खो कि अब जो तुम भागे मुझे छोड़ कर तो बस..."

मुझे एकदम से हँसी आ गई। सहमी हुई सी डरी हुई सी सूरत...। पर इसके पहले कि मैं और कुछ कहूँ, एकदम से एक बिजली सी गिरी हम दोनों पर! बगल वाले कमरे से राजा साहब की आवाज आई— "मुस्तफा..."

डर तो मैं भी गयी कि हाय यह क्या हुआ! शायद बड़े मियाँ ने हम दोनों की खुसुर पुसुर सुन ली। पर कुँवर साहब का सचमुच दम सूख गया।

फिर आवाज आई—"मुस्तफा, अरे मुस्तफा, बोलता नहीं!" और मैंने उस 'मोम की नाक' का अपने हाथ से मुह बन्द कर लिया कि कहीं वह कायर पुरुष बोल न दे। दरवाजा कमरे का बन्द था। अब मैं हद से ज्यादा घबराई कि या खुदा किधर से निकलूं। जल्दी से लपक कर गुसलखाने को देखा, पर उसका रास्ता भी सामने ही को निकलता था। उधर बड़े मियाँ ने आवाज पर आवाज़ दे कर नाक में दम कर दिया, और सीधे उठ कर कमरे के दरवाजे पर। दरवाजा धडधडा कर चिल्लाये—"खोल...मुस्तफा, बदमाश यह कौन है भीतर...?" आये हुये होश जाते रहे। कुछ समझ में न आता था कि क्या करूँ, और क्या न करूँ। इतने में राजा साहब ने शोर मचा कर नौकरों को आवाज़ दी। क्षण भर में राजा साहब नौकरों सहित दरवाजा पीट रहे थे।

या मेरे खुदा ! मै क्या करूँ ? मेरा जीवन-साथी, बहादुर पति सिसक-सिसक कर रो रहा था। इधर मैंने कह दिया—"मार डालूँगी !" और मैंने खिड़की की ओर इशारा करके कहा—"कूद पड़ें" और उधर राजा साहब ने नौकरों से कहा—"तोड डालो किवाड...!"

वक्त नाजुक था। सिवाय खिड़की से निकल जाने के दूसरा कोई मार्ग नहीं था। मैने जल्दी से झाँक कर नीचे देखा और फिर तुरन्त दूसरी कार्यवाही की। पलङ्ग की चादरे लेकर आपस में गाँठ लगाई और उसमें रेशमी दुलाई भी जोड़ी। फुर्ती में खिड़की के जगले में मज़बूती से बाँधा। लिहाफ, तोशक, तकिया आदि नीचे फेंके, जिसमें कि कि चोट न लगे और यह रस्सी-सी बना कर मेने कुँवर साहब को घसीट कर खिड़की के पास लाकर खड़ा किया कि उतरो। उन्होंने डर कर जो इकार किया, तो मैंने कहा—"ढकेल दूँगी नीचे" और यह कह कर मै लिपट गई और कहा—"तुम्हें साथ लेकर गिरती हूँ।" सारॉश यह कि ढकेल कर उन्हे इस रस्सी से नीचे उतारा और उधर यह हाल कि दरवाजा सचमुच तोड़ा जा रहा था, न जाने किस चीज से। कुँवर साहब के सिर पर ही मैं उतरी, और उधर सब लोग दरवाजा तोड़ते रहे।

देखते-ही-देखते मैं कुँवर साहब को निकाल ले गई और सीधी ताँगे पर बैठा कर पहुँची हूँ स्टेशन, तो कानपुर वाली गाड़ी तैयार थी। हम दोनों तुरन्त टिकट लेकर रवाना हो गये। कुँवर साहब पर जो एक दृष्टि डाली, तो उनके गले मे सोने के बटन, हीरे की अँगूठी और सोने की घड़ी थी। मेरे पास भी रुपया था !

हम दोनों सीधे अलीगढ पहुंचे, और अब एक छोटा-सा मकान शहर में लिया, जिसमें किसी को खबर न होने पाये, और मैंने कह दिया कुँवर साहब से कि अब की बार जो तुम भागे छोड़-छाड़ कर, तो याद रक्खो कि तुम्हे और तुम्हारे बाप दोनो को खत्म न कर दिया, तो कोई

काम ही न किया। और यह कह कर रो-रोकर अपनी मुसीबत की कहानी सुनाई। छुरे का घाव खाना, पुलिस के कब्जे में जाना, प्रेम में पागल होकर मौत के मुँह में घुस जाना इत्यादि सब हाल उस कायर, किन्तु प्यारे मूर्ख पति को रो-रोकर समझाये, और कसम खिलवाई कि अब कभी न छोड़ेगा। पर मै यह भी जानती थी कि यह है 'मोम की नाक' जो अपनी आदत और मूर्खता से लाचार है। अतएव सब से पहले तो उनको यह चिन्ता थी कि रुपया दो तीन महीने के बाद चुक जायगा, तब क्या होगा? और मेरा यह कहना था कि कुछ परवाह नहीं, मज़दूरी करूगी और कराऊँगी, घास खुदवाऊँगी, पर जाने नहीं दूँगी।

*   *   *

मगर हमें यहाँ पहुँचे हुये चार ही दिन हुये होंगे कि पहुँचे तूफान की तरह मेरे दुश्मन। इस बार मेरे जे० बड़े कुँवर साहब आये। यह भी बाप की तरह अपने भाई के लिये बड़े ज़ालिम थे। और चूँकि उनकी साली साहिबा का सवाल बीच में था, अतः वही मसल थी कि 'करेला और नीम चढ़ा।' और यही कारण था, जो मैंने बहुत पहले से सोच लिया था कि इनके साथ मुझे कुछ कड़ाई से काम लेना पड़ेगा।

और फिर किस्मत तो देखिये कि उनके आने की खबर भी कैसे मिली है। इस तरह कि हमारे घर के निकट ही उन्होंने अपने भाई को सड़क के किनारे केवल सयोगवश पकड़ लिया, और इस तरह मानो मेरे हाथ से सोने की चिड़िया ले उड़े!

मैं जानती थी कि यह महाशय कहाँ जायँगे। अपने एक स्थानीय परम मित्र के यहाँ। यानी जिनकी कोठी में मुझसे और कुँवर साहब से पहले मुलाकात हुई थी। वास्तव में यह कोठी 'इसीलिये कुँवर साहब ने-

छोड़ी भी थी, कि उसके मालिक एक ज़मीदार थे, जो पास ही रहते थे और बड़े कुँवर साहब के गहरे दोस्त थे।

अब मेरा सौभाग्य कहिये, कि बड़े कुँवर साहब अपने भाई को पकड़ कर ले भागने नहीं आये थे; बल्कि इस झगड़े को स्थायी रूप से निपटाने आये थे—जिस प्रकार भी सम्भव हो—नर्मी से, या लालच से, गरज़ किसी न किसी तरह उनको यह क़िस्सा खत्म करना था। यह इस कारण और भी कि उनकी साली को मैंने जाकर लखनऊ के स्कूल में दहला दिया था। वह महाशय जानते थे कि जब तक यह झगड़ा न खत्म होगा, तब तक साली का विवाह असम्भव है इनकी दरअसल यह इच्छा थी कि जल्दी से जल्दी साली को ब्याह लावें।

साराश यह कि मैं उनके पास जो पहुँची, तो उनको आवश्यकता से अधिक अपने मिलने का इच्छुक पाया। मैं यह सोच कर चली थी कि पहली भेंट है, अच्छा है कि छूटते ही मार चलूँ जिसमें कि जेठ महोदय अपनी छोटी भाभी के सम्बन्ध में कोई ठीक राय कायम कर सकें।

मैंने जब बँगले पर पहुँच कर, चिल्ला कर अपने पहुँचने की घोषणा की, तो वह महाशय निकल आये और बड़ी गम्भीरता के साथ बोले—"देखो, अगर होश की बातें करना हों तब तो ठीक है; नहीं तो मेरे साथ तुमने ज़रा भी औंधी-सीधी बातें कीं, तो यह समझ लो कि मैं बहुत बुरा आदमी हूँ।"

मैंने कहा—"कुँवर साहब, बात तो मैं होश की करूँगी लेकिन यह समझ लीजिये कि आप जरा भी टर्राये या नर्राये या मेरे साथ हेकड़ी जताई, तो मारे जूतियों के मुँह तोड़ दूँगी।"

मैं तो सोच कर ही आयी थी कि पहली ही भेंट में इन्हें दबा लेना है। मेरा यह कहना था कि मानो बारूद के ढेर में आग दे दी। मैं तो इसके लिये तैयार ही थी। उधर उन्होंने मुझे गालियाँ दी हैं, और

नौकर को आगाही दी है कि मुझे मारे, कि लपकी मैं जूती लेकर !

एक गदर मच गया। नौकर ने मुझे, और मैंने नौकर को मारा। मुझे वास्तव में यह नाटक करना ही था। मुझे धक्के देकर और घसीट कर निकाल दिया गया। उधर बड़े कुँवर साहब चूँकि इस झगड़े को समाप्त करना चाहते थे; अतः मुझसे बातचीत आवश्यक थी। और अब मजा देखिये, नौकर ने मुझे घसीट कर बाहर कर ही दिया था कि कुंवर साहब ने नौकर को आवाज दी जरा ठहरना, और मुझे सूचित किया गया कि यदि अब भी चाहूँ तो 'ढङ्ग' का बातें कर लूँ। मैंने भी वही शर्त लगाई कि यदि बेतमीजी हुई, तो मेरी जूती मौजूद है।

साराश यह कि यह निश्चय हुआ कि बातें हों। कुँवर साहब ठढे पड़े; मुझे ठण्ढा किया। नौकर ने भी समझाया। मैं जमीन पर बैठ गई, और सामने कुँवर साहब अपना एक पैर कुरसी पर रख कर खड़े हो गये। सामने क्या देखती हूँ, कि चिक उठाये मेरी 'मोम की नाक' खड़ी है। मैंने कुँवर साहब से कहा कि इनको भी बुला लिया जाय और नौकर को हटा दिया। कुँवर साहब राजी हो गये।

अब बातचीत शुरू हुई। कुँवर साहब ने शुरूआत इस प्रकार की कि मानो यह तो निश्चय ही है कि मुझे अपने पति को छोड़ना पड़ेगा। इस बारे मे तो वाद विवाद ही व्यर्थ है, और अब जो कुछ बातचीत करना है वह केवल यह है कि किन शर्तों पर सम्बन्ध-विच्छेद हो। अब मैंने भी देख लिया कि बहस है, तो सही। अतः मैंने भी कहा कि आप ठीक कहते हैं। मैं मानती हूँ कि रेशम मे टाट का जोड़ नहीं लग सकता; झगडा खत्म कीजिये! मुझे तलाक दिलवा दीजिये और महेर पूरा एक लाख दीजिये। मैने छोड़ा अपने मियाँ को, मजे से जहाँ चाहिये ले जाइये और एक छोड़ दो शादियाँ कीजिये। लेकिन मुझे

तलाक भी न दो और मेरा पति भी हजम कर लो, तो यह नामुमकिन है! खून हो जायँगे!

अब कुँवर साहब की मूर्खता देखिये। वह समझे कि सचमुच रुपया मेरे पति का मूल्य हो सकता है, और यह कि मै थोड़ी-बहुत रकम लेकर राजी हो जाऊँगी। अतएव बड़ी नर्मी से कहने लगे—"ठीक है, पर देखो, मैं तुम्हें एक हजार रुपये दे दूंगा। पॉच सौ के जेवर दूंगा, और अगर तुम मेरा कहना मानो, तो तुमने देखा होगा, वहॉ लखनऊ में एक लड़का है—हमारा नौकर शेरा—उससे तुम्हारा निकाह करा दूंगा, और उसको पॉच सौ रुपये देकर यहाँ अली गढ़ में दूकान भी करा दूंगा; बोलो मजूर है?"

मैं क्या कहूं कि मैंने किस तरह अपने क्रोध को रोका और वाक्य पूरा होने के पहले ही जूती रसीद नहीं की। लेकिन जब उन्होंने वाक्य पूरा किया है, तो मेरे तन बदन में क्रोध की आग धधक रही थी, और मैंने कहा—"कुँवर साहब, या तो मुझे तलाक दिलवाइये और या मेरा मियॉ दीजिये! रह गया शेरा, तो उसके साथ अपनी बेगम साहिबा को तलाक दे कर व्याह दीजिये! मै लिये जाती हूॅ अपने मियॉ को जब तक यह मुझे तलाक नहीं देते।"

कुंवर साहब इस पर फट पड़े, और इधर मैंने लपक कर अपने मियाँ का हाथ पकड़ा, और उधर से कुँवर साहब ने भाई को पकड़ा। नौकर अलग लिपट पड़ा।

"देखता क्या है?' बड़े कुँवर साहब ने अपने भाई से कहा—"मार चुड़ैल को!"

दरअसल मैं उनको पीटने की फिक्र मे थी। एकदम से अपने पति को छोड कर उन पर पिल पड़ी, उनके मुँह पर से ऐनक खींच ली और तोड-मरोड़ कर वहॉ डाल दी। लेकिन इसके जवाब में मुझको बहुत मारा गया। खुद मारा और नौकर से पिटवाया। स्वय

मुझे बेंत से मारा और उससे मुझे ऐसी चोटें आयी कि मैं तिलमिला-तिलमिला गई, और इसी मार के कारण मैं अधिक मुकाबिला न कर सकी। नौकर ने मुझे धक्के दे कर बाहर निकाल दिया। बेंत की मार से मुझे बड़ा कष्ट हुआ, और मै डिप्टी साहब के यहाँ जा रही थी कि जाते जाते रुक गई और थोड़ी दूर जाकर चुपके से लौट आई। बँगले के फाटक के पास गहरी-सी नाली थी, उसमें बैठ कर अहाते की जालीदार दीवार से आँख लगा कर देखती रही कि क्या हो रहा है। कोई दस मिनट भी न बीते होंगे कि मोटर आयी और उसमें दोनों भाई बैठ कर रवाना हुये। मैं तैयार हो गई। जूता मैंने हाथ मे लिया, और जैसे ही चीटियों की भाँति रेंगती हुई मोटर फाटक से निकली है, मैं नाली में से झपट कर निकली। बड़े कुँवर साहब मोटर चला रहे थे, और इसके पहले कि वह समझे कि क्या हुआ, मैंने तडापड उनके मुँह पर जूतियों की वर्षा कर दी। बदहवास होकर उन्होंने मोटर तेज कर दी।

* * *

मैं वास्तव मे डिप्टी साहब के यहाँ जा रही थी; पर मोटर ने जो दिशा ग्रहण की, तो मुझे मालूम हुआ कि यह थोड़ी दूर पर एक मित्र के यहाँ गये हैं। यह मित्र उनके बहुत बड़े हामियों में थे, और वह ऐसे कि उनकी पत्नी इस मामले में इससे पहले फ़ैसला करने को कहती थीं। मैंने सोचा कि अच्छा है कि मैं भी ऐसे मौके पर चलूँ। अतएव मैं जब पहुँची, तो मेरा विचार ठीक निकला, कुँवर साहब की मोटर बरामदे के सामने खड़ी थी।

मैं जो पहुँची, तो यह महाशय कमरे से निकल आये। कड़क कर बोले—"अरे यार, एक जरा सी छोकरी तुम्हारे काबू में नहीं आ..."

और यह कह कर मेरी ओर देख, कड़क कर बोले—"क्यों री चुड़ैल..."

मेरे आग ही तो लग गई, और मैंने गुस्से में एक ईंट उठा कर उनकी ओर दाँत पीस कर कहा—"आओ तुम भी!" मेरा यह कहना था कि लगे जनाब आपे से बाहर होकर गरजने। मैंने भी मन में कहा कि मैंने भी तुम्हारे जैसे बहुत देखे हैं जरा आओ सामने!

सारांश यह कि उनकी हिम्मत न पड़ा जो उतरते, और वह भी अपने बुजुर्गों यानी नौकरों को आवाज देने वाले थे कि अन्दर से उनकी बेगम साहिबा का सन्देश आया कि बुलाती हैं। मैं तो उनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी, तुरन्त राजी हो गई।

मैं अन्दर पहुँची, तो क्या देखती हूँ कि एक बहुत ही सुन्दर, नौजवान और हँस-मुख महिला हैं। बड़े शिष्टाचार के साथ मिलीं और प्रेम के साथ चारपाई पर बैठाया। उन्होंने बड़े स्नेह और सहानुभूति के साथ बात-चीत शुरू की।

कुँवर साहब की विवशता की चर्चा करके उनके हाल पर भी दया दिखाई और झगड़ा निबटाने के लिये कहने लगीं—"बहिन, एक बात कहूँ तुमसे!"

"कहिये।" मैंने कहा।

"देखो, तुम्हारे फायदे की है, और मैं जिम्मा लेती हूँ। तुम्हे तलाक़ मिल जायगा और मेरे रिश्ते का एक भाई है दूर का। तुम्हें दस हजार रुपया मिल जायगा, तुम उससे निकाह कर लेना।"

मैंने जल कर कहा—"शर्म नहीं आती आपको..... अफसोस है आपकी हालत् पर! कोई बीस हजार रुपया दे आपको, तो क्या आप छोड़ देंगी अपने मियाँ को? चलिये मैंने दिये अपने महेर के रुपये आपको! क्यों, क्या राय है, तलाक़ लेना मजूर है आपको?"

थी बेचारी शरीफ़। गुस्सा होने की जगह लजित हो गई। घबरा कर बोली—"माफ़ करो बहिन, मुझे। खुदा तुम्हें तुम्हारा मियाँ मुबारक करे! मगर मैंने तो यह सुना था कि तुम राजी हो मियाँ को छोड़ने पर, लेकिन रुपया माँगती हो, इसलिये मैंने कहा।"

मैंने भी नर्म होकर कहा—"रुपया तो मैं इसलिये माँगती हूँ कि न यह एक लाख देंगे, और न तलाक़ होगा। आप खुद सोचिये, रुपया तो मैं लाचारी की हालत में माँगती हूँ। नहीं तो मुझे सिवाय अपने मियाँ के और कुछ नहीं चाहिये।"

अन्तिम शब्द मैंने कहे, तो मेरी आँखों में आँसू भर आये, और मैं दुपट्टे में मुँह छिपा कर रोने लगी।

मुझसे सहानुभूति के साथ उन्होंने कहा—"नहीं बहिन, तुम रोओ मत।"

और यह कर तेजी से अपने पति से कहने के लिये गईं।

अब एक और मजा आया। उनके मोटर-ड्राईवर साहब ने सुना कि अगर कोई इस लड़की को तलाक़ पर राज़ी कर ले, तो कुँवर साहब दस हजार रुपया देंगे। उन्होंने जो सुना तो बेचैन हो गये, और कहने लगे चुटकी बजा कर कि "मिनटों मे लीजिये!" कुँवर साहब ने कहा कि दस हजार में मैं दो हजार और बढ़ाता हूँ। और यह सुन कर यह महाशय सचमुच उछलने लगे। उनको यह नहीं मालूम था कि मैं क्या चीज हूँ। अपने को स्त्रियों का विशेषज्ञ भी समझते थे, और जैसा कि मुझे बाद मे मालूम हुआ, यह उछल-उछल कर सब से कह रहे थे कि मिनटों मे वे मुझे खुद अपना दीवाना बना लेंगे। खुदा रक्खे, उनकी सूरत ही बड़ी प्यारी थी कि मै क्या, कोई भी औरत उन पर दीवानी हो जाती! उनकी उम्र कोई चालीस वर्ष की थी, और अपने कथन के अनुसार मेरी सी दर्जनों छोकरियाँ उनके पीछे पागल हो चुकी थीं।

उनके मुँह पर दो-तीन बड़े-बड़े मुँहासे भी थे, और उन गुमड़ों से एक अच्छा सा मेरी जूती से फूट गया।

सारांश यह कि मैं जब भीतर से निकली, तो यह महाशय मेरे लिये बेचैन खड़े थे। और जैसे ही मैं निकली कि मेरी ओर बढ़े और बड़े प्रेम के साथ मुझसे बोले कि मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें सलाह दूँ। मुझे चुमकारते, बहलाते, फुसलाते सामने के पेड के नीचे ले गये और मुझसे इतमीनान के साथ आप कहते क्या हैं—"तुम्हारी ज़िन्दगी अभी सुधरी जाती है, और बाक़ी जिन्दगी ठाठ के साथ रईसों की तरह बिताओ..."

मैंने खुश होकर कहा—"वह क्यों कर ?" मुझे पता नहीं कि वह दुष्ट क्या कहेगा।

"वह यह कि बस जो कहूँ सो करो, और पन्द्रह हज़ार रुपया अभी-अभी तुम्हारा है।"

मैंने कहा—"कहो..." और अब मैंने समझ लिया कि क्या कहने वाला है, और अपना हाथ धीरे से पैर की तरफ ले गई, जिसमें कि अनजाने में जूता अच्छा पडे।

उन्होंने कहा—"मुझसे शादी कर लो, और अभी पन्द्रह हज़ार .."

इसके पहले कि उनका वाक्य पूर्ण हो, तड से मैंने उनके मुँह पर जूता दिया। ऐसा कि उनके मुँहासे या गुमड़े पर पडा और उकडूँ तो बैठे ही थे, सिर पर हाथ का धक्का देकर लुढका कर जो जूतियाँ मारी हैं, तो उधर से लोगों के ठहाकों की आवाज़ें, और इधर खून से मुँह लाल ! मै उनके सिर जूता ताने थी कि वह बदहवास होकर भागे और कुछ होश-ठिकाने होने पर लौटे गालियाँ देते हुये मारने को। पर अब मैंने एक इतनी बड़ी ईंट उठाई, जो आसानी से उनका सिर फोड सके।

सारांश यह कि बेचारे बुरी तरह झेंपे और मेरे बारे में उन्होंने बिलकुल ठीक राय क़ायम की कि—"अजी साहब, बड़ी बदमाश निकली !"

मैंने कुँवर साहब से कहा कि—"आप सीधी तरह से मेरे मियाँ व मुझे दे दीजिये, नहीं तो आपको मालूम है कि मैं फिर ज़बरदस्ती ं भागूँगी..."

मैंन वाक्य पूरा भी न किया था कि मेरे हितचिन्तक डिप्टी साह का पत्र आया बड़े कुँवर साहब के नाम। यह पत्र उनका आदमी लेक उनके बङ्गले पर गया था, और वहाँ से आया। उन्होंने बुलाय था कि वह बीच में पड़ कर समझौता करा दें। कुँवर साहब तं हारे ही बैठे थे; मुझसे कहने लगे—"अगर तू लड़े नहीं, तो चल मोटर पर।"

मैं राजी हो गई, और कुँवर साहब रवाना होने लगे। मैंने देखा वि छोटे कुँवर साहब पीछे बैठे हैं, मुझसे आगे बैठने को कहा; लेकिन मैं लपक कर अपने पति के साथ बैठ गई, और मैंने अपने पति का हाथ पकड़ कर कहा—"अब चाहे मुझे काट डालो, मैं नहीं छोड़ूँगी !"

बड़े कुँवर साहब ने मुझसे वायदा-ख़िलाफ़ी की शिकायत की, तो मैंने उनको इतमीनान दिलाया कि बिलकुल गड़बड़ न करूँगी।

कुँवर साहब पहले अपने बङ्गले पर गये और वहाँ से कुछ ज़रूरी कागज-पत्र और लिये, और फिर हम सब डिप्टी साहब के यहाँ पहुँचे।

डिप्टी साहब के बड़े कमरे में सन्धि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। मेरी चहेती हितैषी बहिन यानी डिप्टी साहब की पत्नी परदे की आड़ में खड़ी झाँक रही थीं। बात-चीत बड़े मार्के की हुई। सब लोग कुरसी पर बैठ गये, और मैं फ़र्श पर बैठ गई। डिप्टी साहब ने मामला बड़ी सफ़ाई से

पेश किया। उन्होंने कहा—"कुँवर साहब, इस अभागिनी लड़की पर ज़ुल्म की हद हो चुकी। मैं अब तक चुप था; लेकिन अब मैं लाचार हो कर सचाई की मदद करता हूं। आपके सामने साफ मामला है। महेर के दस्तावेज़ देखिये। एक लाख रुपया महेर का तलाक़ देने पर आपको देना पड़ेगा। लड़की का कहना है कि तलाक़ दीजिये या उसका पति। रह गई इसमें कमी या वेशी, तो इस मामले में मैं खुद आपकी तरफ से इससे अपील करूँगा कि कम कर दे और कोशिश करूँगा कि इसमें से कुछ छोड़ दे..."

मैंने बात काट कर कहा—"मै एक कौड़ी नही छोड़ूंगी, मैं दर-असल तलाक़ ही नही चाहती।"

कुँवर साहब ने इसके जवाब में कहा - चूँकि आप इसके हमदर्द हैं इसलिये अच्छा है कि आप इसको भी यह दस्तावेज देख कर समझा दें कि हम अब भी दस हजार या पन्द्रह हज़ार इसको देते हैं, और यही ग़नीमत है।" यह कह कर कुँवर साहब ने वह जाली रजिस्ट्री दस्तावेज़ पेश किया, जिस पर मेरे अंगूठे का निशान अस्पताल में लिया गया था।

डिप्टी साहब ने दस्तावेज गौर से देखा। कुँवर साहब ने विजयी की तरह कहा—"यह खड़ी है, आप पूछ लीजिये, यह इन्कार नही कर सकती कि इसके अँगूठे का निशान नहीं है।"

दस्तावेज मुझे दिखाया गया, पढ कर सुनाया गया, मैंने बिलकुल अज्ञान प्रकट किया। इतने में डिप्टी साहब उठे और उन्होंने स्याही लगा कर मेरे अँगूठे के कई निशान कागज पर लिये और उनको उस निशान से मिला कर देखा और एक पाया। मुझे एक म ख़याल आ गया और मैंने बताया कि एक कागज़ पर मुझसे अस्पताल मे जरूर निशान लिया गया। मुमकिन है यही हो।

कुँवर साहब ने विजयी की भाँति दस्तवेज़ को लपेटते हुए कहा—"डिप्टी साहब अच्छा हो कि आप इसको समझा दें, यह भी बहुत समझिये।"

डिप्टीसाहब ने कहा—"लेकिन यह तो जाली मालूम होता है।"

कुँवर साहब बोले—"आप कह सकते हैं, मैं आपको कैसे मना करूँ। सोच लीजिये अच्छी तरह कि महेर का दस्तवेज़ कौड़ी काम का नहीं, और उसके ज़ोर से आप मुझसे कुछ नहीं ले सकते।'

अब मै समझ गई थी, और मैं ने परेशान होकर कहा—"कुँवर साहब, मैं दस्तावेजों के बलबूते पर नहीं लड़ी, मैं तो अपने जोर से लूँगी। महेर आप रखियेगा। क्या मुझे छोड़ कर यह (अपने पति की ओर सकेत करके) ज़िन्दा भी रह सकते हैं?"

यह कह कर मैं कुछ सोच कर अन्दर चली, और डिप्टी साहब बेचारे, जो पराजित की भाँति घबरा गये थे, एकदम से बोले—"ज़रा यह तो बताइये कि यह दस्तावेज़ किस तारीख का है।"

"यह लीजिये।" कुँवर साहब ने दस्तावेज़ जेब से निकाल कर तारीख दिखाई। डिप्टी साहब ने कहा—"ज़रा ठहरिये!" और यह कह कर वह बराबर वाले कमरे में गये, और मैं लपकी अन्दर। क्योंकि मै निराश हो गई थी और अन्दर से चाकू लेने चली कि इन दोनों भाईयों को अभी अभी समाप्त कर दूँ।

बेगम साहिबा ने बहुत रोका; पर मैंने उनसे कहा कि डराने के लिए ले जाती हूँ। इधर मैं छुरी को कपड़ों में छिपाये पहुँची हूँ, और उधर डिप्टी साहब गरजते हुए आये। उनके हाथ में वह तार था, जो उनको मेरे बारे मे काकोरी की पुलिस ने हाल पूछने के लिए भेजा था। उस तार की तारीख और दस्तावेज की तारीख एक थी। तार इस बात का सबूत था कि मै उस समय पुलिस की हिरासत में काकोरी की

हवालात में थी, न कि लखनऊ के रजिस्ट्री के दफ्तर में। और डिप्टी साहब ने ये सब बातें कुँवर साहब को समझा कर कहा—"कुँवर साहब, मेरी समझ में अब आपकी हार है। नहीं तो दूसरी सूरत में खतरा है। फिर राजा साहब अदालत मे इसका जाली न होना साबित नहीं कर सकेंगे। और इसका जो नतीजा हो सकता है, उसे मुझसे ज्यादा शायद आप समझते होंगे। और फिर वह कौन अन्धा रजिस्ट्रार था, जिसने अँगूठे के निशान लेने का काम चपरासियों पर छोड़ दिया था।"

कुँवर साहब के होश जाते रहे, सिटपिटा गये, मारे भय के हकलाने लगे, क्योंकि गौर से देखने से अँगूठे भी भिन्न प्रतीत हुए।

डिप्टी साहब ने कहा—"इसके अलावा इस अभागिनि पर जो क़ातिलाना (प्राण-घातक) हमला हुआ है, उसके वाकयात भी अब ज्यादा दिनों तक छिपे न रह सकेंगे .....और मै साथ ही यह भी कह देना चाहता हूँ कि इस ग़रीब को हिमायत मे मेरा और बीबी का रुपया और मेरे दो दोस्तों की मदद भी मौजूद है, और ये दोनों दोस्त जिले के मशहूर और कामयाब वकील हैं।"

कुँवर साहब का मारे भय के गला सूख गया। बड़े घबराये और बड़ी नम्रता से कहने लगे—"मैं जनाब वालिद साहब को अभी तार देता हूँ कि वह आ जाये; और इस वक्त तो इजाजत हो।"

डिप्टी साहब ने बड़े कुँवर साहब की तरफ देखा और मैंने कहा—"या फिर अपनी और इनकी जान एक कर दूँगी।"

मेरे तेवर देखते ही कुँवर साहब ने कहा—"अच्छा' कुछ हर्ज नहीं।"

बड़े कुँवर साहब और डिप्टी साहब हम दोनों को कमरे में खड़ा कर बाहर गये, और इधर इनकी बेगम साहिबा मारे खुशी से पागल होकर निकल आई और आवेग मे आकर न दुआ, न सलाम उन्होंने

कुँवर साहब के सामने आकर कहा—"कुँवर साहब, ऐसी बीबी नहीं मिलेगी। खुदा के लिये इसे गले लगालो, खुदा का शुक्र करो!"

मैंने कहा—"यह बेचारे मुझे क्या गले लगायँगे......इन्हें तो मैं गले लगा लू......" और यह कह कर मैंने हँसते हुये जो गले लगाना चाहा, तो आप भड़क कर रह गये और त्योरी पर बल डाल कर कहने लगे—"यह क्या बेतमीज़ी!"

हम दोनों ने एक ठहाका लगाया। इतने में डिप्टी साहब भी कमरे मे आये और आते ही मेरी पीठ ठोंकी और हँस कर कहा—"शाबाश जीती रहो!......"फिर कुँवर साहब की तरफ देख कर कहा—"अः खड़े कैसे हैं आप, जोरू की हिरासत में समझिये अपने को। उतारिये कोठ वगैरह।" फिर मुझसे पूछा—"अरे, इनको कहाँ ठहरायेगी, अन्दर कि बाहर?"

"अन्दर।" मैंने चिल्ला कर कहा—"जनानखाने में।" और मैंने यही किया।

तीसरे दिन राजा साहब आ गये।

उसी कमरे में हम सब इकट्ठे हुये। राजा साहब ने आते-आते कहा कि हम पूरा एक लाख देने को तैयार हैं, लिखिये तलाकनामा।"

मैंने कहा—"मजूर है मुझे......अभी लिखवा लीजिये। पर आप जो यह सोचते हों कि अपने बेटे को वापस ले जायँगे, तो यह समझ लीजिये...! यह कह कर मैंने तेवर पर बल डाल कर एक चाकू निकाल कर दिखलाते हुये कहा—"इनकी लाश यहाँ से निकलेगी, और फिर फाँसी पर लटकने से पहले जाली दस्तावेज बनाने और मुझे कत्ल कराने के जुर्म में आपको भी जेल न करा दूं तो मेरा जिम्मा! लिखाईये तलाकनामा......खुदा की कसम! (आँखों को खूनी बना कर) अभी काम तमाम न कर दिया, तो बात नहीं......खाम मखाई

मुझे मेरे मियाँ से छुड़ाते हैं!" लेकिन इतना कहते-कहते मैं बेकाबू होकर रोती हुई मुँह छिपाकर बैठ गई।

डिप्टी साहब ने कहा—"राजा साहब! कहिये क्या इरादा है? तलाकनामा लिखाऊँ? लेकिन क्यों आप इन दोनों को छुड़ाते हैं? मुझे डर है कि तलाक होने की सूरत मे यह आप से जरूर बदला लेगी। कम से कम जाली दस्तावेज ....."

"लाहौल बिला कूवत! मैं कब छुड़ाता हूँ, मेरी बला से।" हकला कर, किन्तु भयभीत से होकर राजा साहब ने कहा।

मैंने चिल्ला कर कहा—"लिखवा लीजिये इनसे, लिखवा लीजिये इनसे!"

और डिप्टी साहब ने कलम और कागज राजा साहब के हाथ में दिया और सोचने तक का अवकाश न दिया।

उन्होंने वहीं का वहीं लिख दिया कि मुझे कोई आपत्ति नहीं, यदि मेरा लड़का अपनी वर्तमान पत्नी को तलाक़ नहीं देता। मै पूर्ववत् उसको कालेज मे, जिस तरह अब तक शिक्षा दिलाता रहा हूँ, वैसे ही दिलाता रहूँगा। और वह जिस तरह चाहे अपनी पत्नी को रक्खे। मैं उसकी पत्नी को भी हैसियत के अनुसार खर्च देता रहूँगा।

उधर बड़े मियाँ ने यह लिखा, और इधर मैंने उनके पाँव पकड़ लिये और अपना सिर उनके चरणों पर रख दिया, और फिर जो मुझको रोना आया है, तो न पूछिये! हिचकी बँध गई।

डिप्टी साहब ने पिघल कर कहा—'राजा साहब, माफ कर दीजिये!"

अन्दर से बेगम साहिबा ने बदहवास होकर और चिल्ला कर कहा—"माफ कर दीजिये राजा साहब, आपको खुदा का वास्ता, रसूल का वास्ता, माफ कर दीजिये!"

बदहवास होकर राजा साहब ने कहा—"मैंने माफ़ किया, और मेरे खुदा ने माफ किया !"

मैं और भी ज़ोरों से रो पड़ी। राजा साहब के नेत्र भी सजल हो गये, और वे बोले—"बेटी, तू जीती, मैं हारा ! तू हक़ पर, और मै खतावार ! मैंने जो ज़ुल्म किये तू भी माफ कर दे !"

मैंने रोते हुए अपने आदरणीय ससुर के चरण चूम लिये और उनके पैरों पर आँखें मल दी। उन्होंने उठा कर मुझे गले से लगा लिया।

यह तो सब कुछ हो गया और इसको बीते एक लम्बा समय हो चुका। मै पीलुवा की सम्मानित बहू हूँ। पर एक बात है। वह यह कि मारे शर्म के कटी जाती हूँ जब मन में सोचती हूँ कि बेहया, बेशर्म नौकर-चाकर और पति से लेकर ससुर तक सभी को तूने जूतियों से मारा है। खानदान का कोई मर्द नहीं छोड़ा, जिसे न पीटा हो। मुँह दिखाने के काबिल नहीं। धिक्कार है तेरे जीवन पर !

कुछ भी हो, लेकिन वर्तमान स्थिति यह है कि मुझे जरा भी गुस्सा आ जाता है तो नौकर काँप जाते है, और पीलुवा के महल भी काँप उठते हैं !

५

दादा मकान के किसी भीतरी भाग मे नमाज पढ रहे थे, और उनके नमाज के स्थान से ऊद और अगर की पवित्र सुगन्ध उठ-उठ कर सारे घर मे फैल रही थी।

मैं अपने शृगार गृह में एक कदे-आदम आईने के आगे खड़ी अपने बाल घुँघराले बनाने की कोशिश कर रही थी और युगल-जोड़ी के प्रेम का खयाल कर करके मुस्करा रही थी। आजकल घर का वायु मण्डल इतना दिलचस्प और रगीन था, जैसे किसी प्रेम-कहानी का कथानक।

यह मार्च के आरम्भ की एक अत्यन्त सुखद और अत्यधिक चमकीली सध्या की बात है। खिड़कियों और दरवाजे के रगीन शीशों तथा सुन्दर परदों में से होकर सुनहरी धूप कमरे में आ रही थी, जो ईरानी गलीचों के फूलों को और अधिक चटकीला बना रही थी।

खिडकी खुली हुई थी, जिसमे से बगीचे का दृश्य दिखाई दे रहा था। तीव्र सुगन्धवाले सुन्दर फूल खिले हुये थे, वेले और चमेली की कलियाँ मुस्करा रही थीं; आकाश नीला-नीला था और झुकी हुई हरी-हरी टहनियों पर पत्ती सीटियाँ बजा रहे थे।

इतने मे बरामदे की ओर से आवाज आई—"तीन महीने हुये, मैंने एक लाल गुलाब तुम्हारी सेवा में बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अर्पित किया था।"

एक महीन स्वर सुनाई पड़ा—"वह अब तक मेरे कलमदान में बड़ी सावधानी के साथ सुरक्षित है।"

"आह! तुम उससे केवल कलमदान की शोभा ही बढ़ाये रहोगी...या...?"

फिर महीन स्वर सुनाई पड़ा—"मैं क्या करूँ, रीहानी...! तुम जानते हो, मैं तुमसे...उफ़...आह...कितना...(हाँफते हुये धीरे से) प्रे...म...करती हूँ। केवल दादा मार्ग के कंटक बने हुये हैं, और उनसे भी अधिक वह बूढ़ा दुष्ट मरजान।"

मरजान, दादा के एक बड़े प्रिय मित्र थे।

यह सुनकर रीहानी कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"क्या यह नहीं हो सकता, मेरी प्यारी सूफी, कि दादा और इस जालिम बूढ़े को जल-वायु-परिवर्त्तन के लिये कुछ दिनों के लिये पहाड़ पर भेज दिया जाय?"

"उपाय तो तुमने खूब सोचा।" सूफी की आवाज आई—"आज-कल दादा की पेचिश भी जोर पर है।"

रीहानी की आवाज आई—"ठीक इसी अवसर पर पेचिश का होना भी सौभाग्य की बात है।"

हलकी हँसी की आवाज।

"नहीं रीहानी!" सूफी की आवाज आई—"बेचारे दादा के बारे में ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकालो। उनके स्वभाव की तेजी और हमारे ऊपर उनके कुछ अनुचित प्रतिबन्धों के अतिरिक्त उनमें और तो कोई ऐसी बात नहीं कि हम उनकी कृपा और प्रेम को भूल जायँ। हाँ, वह दुष्ट मरजान जरूर घृणा के योग्य है।"

"मेरा दिल तो......" रीहानी बोला—"दादा की ओर से भी टूटा हुआ है। वैसे वे स्वभाव के तेज हैं। इस पर आजकल की पेचिश ने और भी चिड़चिड़ा बना दिया है। तब उन्हें पहाड़ पर कैसे भेजा जाय? और फिर उस बूढ़े मरजान को?"

"तुम इसको चिन्ता न करो!" सूफो धोमे स्वर में कहने लगो—"मैं इसका जिक्र आज हो मौका देखकर कर दूंगी। आज चचा मर-जान भी गाँव गये हुये हैं, दादा अकेले हैं, मौका अच्छा है।"

वार्त्तालाप की यह आवाज परिश्चम के बरामदे के अन्तिम जीने पर से आ रही थी, जो मेरे वस्त्रागार के बिलकुल सामने था। मैंने दबे पाँव खिड़की तक जाकर उसमें से झाँक कर देखा, तो सूफी और रीहानी आपस में एक दूसरे का हाथ थामे दादा को आँखों मे धूल झोंकने की तरकीब सोचते दिखाई पड़े। मुझे जोर की हँसी आ गई। साथ ही घृणा भी लगी। मैं कुछ सोचती हुई खिड़की के आगे कोच पर बैठ गई और जल्दी-जल्दी ब्रश से नाखूनों पर रङ्ग लगाने लगी।

पौने पाँच बजे थे। एकाएक कोठे की सोढ़ी पर से दादा की गरज-दार आवाज सुनाई पड़ी—"नौजवान आदमियों, तुम सब कहाँ गायब हो गये? आज चाय नहीं पियोगे?" फिर धीमे स्वर में कहने लगे—"सब के सब अपने शृंगार-गृहों में बन सँवर रहे होंगे। अहमद! अह-मद! चाय ले आओ चाय पुस्तकालय में लाना और मिनटों में ले आना।"

मैं अपने नाखूनों पर पालिश कर रही थी। जल्दी में ब्रश हाथ ही में लिये हुये भागी। "मैं तैयार हूँ दादा!" यह कहते हुये मैं दादा के निकट चली गई। वे मनका फेरते हुये पुस्तकालय में चले गये, फिर वहाँ से थोड़ा घूम कर पूछने लगे—"और यह तुम्हारे हाथ में ब्रश कैसा है लड़की?"

दादा जान को शृंगार की प्रायः प्रत्येक चीज से हार्दिक घृणा थी, इसलिये मैं कुछ बौखला सी गई—"जी...यह...दादा...यह मैं दाँत साफ कर रही थी, दादा! डाक्टर सवाली ने मुझे ताकीद की है कि दिन में कम से कम तीन बार दाँत साफ किया करूँ, इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है।"

"शाबाश !" दादा ने कहा और भीतर चले गये।

डाक्टर सवाली दादा की दृष्टि में देवता का स्थान रखते थे। वह एक मरी हुई सूरत और उदास, मुड़ी हुई मूँछोंवाला घृणा के योग्य आदमी था। उस व्यक्ति के प्रति दादा ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रक्खी थी। डाक्टर सवाली को दामाद तक बनाने की बात वे सोच रहे थे।

मैंने भाग कर रग का ब्रश कमरे में रख दिया, फिर आईने म अपने चेहरे पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली। ओठों की लाली दादा के खयाल ने कुछ कम की; कुछ पलट कर आईने में वस्त्रों का भी देख लिया; फिर भाग कर पुस्तकालय में पहुँच गई।

उन दिनों साधारणतया हम लोग संध्या की चाय दादा के पुस्तकालय में पिया करते थे। अतः एक बहुत लम्बी खिड़की के आगे, जिस पर हलके रग की हरी जाली का परदा पड़ा हुआ था, तीन छोटी छोटी मेजों पर अहमद चाय का सामान शान्ति से लगा रहा था। मैं चुपके से जाकर दादा की बगल मे बैठ गई।

"आप चाय पीजियेगा या कॉफी ?" मैंने दादा से पूछा।

उसी समय दक्षिण के दरवाजे से रीहानी ने समुद्री वस्त्र पहिने हुये प्रवेश किया और दादा को अभिवादन किया।

"सलाम कैसी तबीअत है दादा ?"

"अच्छी है।" कुछ रुक कर दादा बोले—"सूफी किधर गई, बेटा रीहानी ?"

रीहानी ने झट उत्तर दिया—"आज सुबह से मैंने उसे नहीं देखा दादा जान !"

दादा घबरा गये—"हैं !...आज सुबह से !"

मैं रीहानी के सफेद झूठ पर अनायास मुस्करा पडी और घूर कर रीहानी को देखा। फिर दादा की ओर आकर्षित होकर पूछा—"हाँ, तो आपने बताया नहीं, आपको चाय दूँ या कॉफी ?"

रीहानी मेरे अन्दाज पर कुछ चौकन्ना सा हुआ। फिर सँभल कर तुरन्त बोला—"रूही ! दादा को आज तुम 'ओवलटिन' दो।"

"क्यो ?" मैने चायदानी का ढक्कन उठाते हुये, जरा मुस्कराकर पूछा।

रीहानी कहने लगा—"क्योंकि आज तीन दिन से दादा कुछ कमजोर और पीले से दिखाई पड रहे हैं।"

मुझे हँसी आ गई। रीहानी बहुत घबराया—"फिजूल क्यों हँस रही हो, रूही ?" *रीहानी ने क्रोध को दबाये हुये अजगर की भाँति* मुझे घूरते हुये कहा।

उत की खिड़की से एकाएक सूफी अन्दर कूद पड़ी। वह फीरोजी रेशमँ की चादर में लिपटी हुई थी और उसने पूर्वीय ढङ्ग की चमकदार जूतियाँ पहिन रक्खी थीं। उसने तुरन्त दादा के पास जाकर आदरपूर्वक उनके हाथ छुये और पूछा—"प्यारे दादा' आपका चेहरा इतना पीला क्यों है ?"

मे सूफी की गुप्त मुस्कान को देखने लगी। वेकार न रहने के लिये दूधदानी उठाकर चीनीदानी के पास रख दी।

बेचारे दादा कुछ घबरा से गये—"क्यो बेटी, क्या ज्यादा पीला हूँ ?"

"हाँ दादा, आप केले के नये निकले हुये पत्ते की तरह पीले हैं।" सूफी ने कहा।

"बिलकुल नीबू का सा रग हो गया है।" रीहानी ने एक बिस्कुट चबाते हुये ठण्डी आह भर कर कहा।

"अरे रीहानी !" सूफी ने कहा—"तुम भी चले आये ? अब तो तुम घर में बहुत कम दिखाई पड़ते हो, ज्यादा वक्त समुद्र में ही बिताते हो। खूब !"

"तुम्हारी दुआ से।"

मुझे फिर हँसी आने लगी, जिसे मैंने बड़ी कठिनाई से रोका। बात यह थी कि दादा हम तीनों को कार्य में व्यस्त देखना पसन्द करते थे। इस सम्बन्ध मे रीहानी को बराबर ताकीद करते कि छुट्टी के दिन वह समुद्र में तैर कर व्यायाम किया करे। सारी छुट्टियाँ इसी काम में बिताने की उन्होंने आज्ञा दे रक्खी थी। जब मेरी हँसी न रुकी, तब मैं झुक कर चायदानी के भीतर झाँकने लगी।

"चायदानी के अन्दर क्या लगा हुआ है ? वहाँ क्या झाँक रही हो ?" दादा ने आशा के विपरीत पूछा। फिर ठण्ढी साँस लेकर बोले— "स्वास्थ्य दिन पर दिन जवाब देता जाता है। डाक्टर सवाली ने बहुत कोशिश की, पर कोई लाभ न हुआ। जान पड़ता है, जीवन के बहुत थोड़े दिन रह गये हैं।"

"खुदा न करे !" सूफी ने रूमाल से आँसू पोंछ कर कहा— "मेरे दादा, आप ऐसी अशुभ बातें न किया कीजिये।"

रीहानी चाय का एक गर्म-गर्म घूँट लेकर बोला—"प्यारे दादा, आप परेशान क्यों होते हैं ? खुदा आपको दो हजार साल जीवित रक्खे ! कहिये तो एक प्रस्ताव रक्खूँ ? इससे आपके रोग में, मेरा खयाल है कि बहुत कमी हो जायगी।"

"वह क्या प्रस्ताव है, बेटा ?" दादा आज असाधारण रूप से मेहरबान दिखाई पड़ रहे थे। मैं अपनी जगह खूब मुस्करा रही थी। कभी चायदानी उठा कर दूसरी तरफ रख देती कभी हँसी छिपाने के लिए खिड़की से बाग की ओर देखने लगती। रीहानी और सूफी मेरे ये ढंग

देख-देख कर कुछ चिन्तित से हो रहे थे और मुझे संदिग्ध तथा प्रति-शोध की दृष्टि से देख रहे थे।

"वह क्या उपाय है, बेटा?" उन्होंने फिर कहा।

"दादा, पहाड़..."

रीहानी के मुँह से इतना सुनकर मैं खुल कर हँस पड़ी। रीहानी और सूफी के चेहरे फक हो गये।

"हाय, हाय, यह क्या?" रीहानी ने अनजान बन कर कहा—"रूही तो आज पागलों की तरह रह-रह कर हँसती है।"

"इसका तो बाकायदा इलाज होना चाहिये।" सूफी ने बहुत चिढ कर कहा—"नहीं तो यह लडकी पागल हो जायगी। आखिर तुम्हें हँसी किस बात पर आई?"

मैं व्यग्य से बोली—"जी हाँ मैं पागल हूँ और दादा रोगी तथा कमजोर! अतः हम दोनों को पहाड़ भेज दो।"

मैं फिर जोर से हँस पडी।

यह सुनकर रीहानी और सूफी के होश उड़ गये दोनों ने एक दूसरे को रहस्यपूर्ण ढङ्ग से देखा।

"मैं अभी आता हूँ।" रीहानी यह कह कर खिड़की के रास्ते से बाग में उतर गया।

सूफी मुश्किल से दो क्षण बैठी बिस्कुट की 'प्लेट' को ताकती रही फिर बोली—"ओहो, 'प्लम-केक' तो बाहर ही रह गया। कहीं बिल्ली न खा जावे!" यह कह कर कमरे से भागने के उद्देश्य से वह उठ खड़ी हुई।

मैं तुरन्त बोली—"केक मैं आलमारी में रख आई हूँ। तुम फिक्र न करो।"

पर सूफी ने मेरी बात न सुनी। क्रुद्ध दृष्टि से मुझे देखती हुई भोजन-गृह की ओर भाग गई।

मैं एक आज्ञाकारिणी बालिका की भाँति बैठी दादा को 'ओवल-टिन, बना कर देती रही।

उसी रात की बात है। मैं बाग के जीने पर अँधेरे में खड़ी एक कविता सोच रही थी कि इतने मे रजनीगन्धा की सुगन्धित लता के पास दो छायाएँ हिलती दिखाई पडी।

"देखो रीहानी !" सूफी की आवाज आई—"कहीं यहाँ साँप न हों' अँधेरा है।"

रीहानी ने ठण्ढी साँस लेकर कहा—"मुझे प्रेम का साँप डस चुका है। अब मुझे किसी साँप का डर नहीं।"

यह सुन कर मैं जोर से हँस पड़ी। अँधेरे में हँसी की आवाज, इस पर तेज बारीक आवाज सीटी की भाँति गूँजी। दोनों सिहर उठे।

"हयँ !" रीहानी खिसिया कर आश्चर्य के साथ बोला—"यह आवाज किधर से आई ? क्या तुम हँस पड़ी थीं सूफी ?"

"नहीं तो रीहानी, मैं खुद सोच रही हूँ कि यह आवाज कहाँ से आई। कोई हमारी बातें न सुन रहा हो।"

रीहानी विरक्त होकर बोला—"अजब मुसीबत में जान है। आज शाम की बातें अवश्य उस अभागी रूही ने सुन ली थीं। तभी चाय के समय दादा के आगे हँसे जा रही थी। खुदा करे, इस शैतान की फुर्की का ब्याह दादा किसी बूढे खूसट से कर दें ! मुझे तो सचमुच बड़ी खुशी होगी। किसी न किसी तरह अब एकान्त मिला, तो फिर कोई आवाज बाधक होने लगी। ठहरो, मैं ढूँढ़ता हूँ, कौन है।"

मैं अपनी फूलदार नीली चादर में लिपटी-लिपटाई बाग के जीने पर दुबक कर बैठ गई, अतः रीहानी मुझे न देख सका। अपने विषय

में उन लोगों की बातें सुन कर मै जल गई थी और बदला लेने का निश्चय कर चुकी थी।

सूफी कहने लगी—"खैर रीहानी, यहाँ से चलो, कमरे मे बैठें। यहाँ तो साँप का भी डर है और आदमियों का भी।"

दोनों एक दूसरे का सहारा लिये धीरे-धीरे सीढी की ओर आये। कोठे की खिडकी मे से होकर कुछ-कुछ रोशनी उन दोनों प्रेमियों के चेहरों पर पड रही थी।

"या अल्लाह! यह जीने पर कौन? चोर?" सूफी सहम कर रीहानी से लिपट गई।

"डरो मत, मेरी जान!" रीहानी ने कहा—'कोई बिल्ली-इल्ली होगी।"

"नहीं रीहानी, बिल्ली नही .." सूफी ने बिसूर कर कहा।

"रूही?" रीहानी ने चौंक कर पुकारा।

"हाँ, मै हूँ .." मैंने बड़े इतमीनान से कहा। फिर अनजान बन कर पूछने लगी—"तुम दोनों कहाँ से आ रहे हो।"

"जहन्नुम से!" रीहानी जल कर बोला—"यह तुम मक्खियों और मकडियों की तरह दिन-रात दुबकी कहाँ बैठी रहती हो? इम्तहान सिर पर है, छुट्टियों के दिन हैं, कुछ लिखो पढो, नहीं तो मैं दादा से कह दूँगी।"

मैं जल कर बोली—"और मैं भी कह दूँगी।"

मेरी इस बात पर सूफी के कान खड़े हुये। "क्या? क्या कह दोगी दादा से से ..उफ रीहानी!" सूफी सिहर गई, गरमी की रात में सूफी की महीन आवाज बाग के अहाते में चिड़िया की चहचहाहट की तरह गूज गई।

रीहानी भी डर गया और मौक़े को देख कर मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया—"यह क्या बात है, रूही! तुम बेवकूफ़ों की तरह बात-बात पर चिढ़ जाती हो। तुम्हारे भले के लिये ही तो कहता हूँ कि इम्तहान सिर पर है, कुछ फ़िक्र करो। बेकार इधर-उधर बैठ कर वक्त ख़राब करने से क्या लाभ?"

मैं गुस्से से हाथ छुड़ा कर कहने लगी—"बस, बस!"

रीहानी बोला—"ए बहिन! तुम तो ख़फा हो गई। अच्छा, सबसे पहले यह तो बताओ, तुमने कुछ सुना तो नहीं!"

"क्या...?" मैंने जरा घमण्ड के साथ पूछा, जिसमें दोनों के ऊपर रोब जम जाय।

"यही हमारी बातें ..." रीहानी डरते-डरते बोला।

"नहीं तो।" मैंने कहा—"सिर्फ़ साँप का क़िस्सा सुना था।" यह कह कर मैं जोर से हँस पड़ी।

"हाय! ग़ज़ब हुआ!" सूफ़ी चीख़ पड़ी—"देखना रूही...!"

रीहानी कहने लगा—"इस साँप वाली बात को कहीं दादा के आगे न दोहरा देना, प्यारी! नहीं तो तुम जानती हो...जानती हो..."

मैं शरारत से हँसने लगी—"ज़रूर दोहराऊँगी।"

नहीं, रूही! मेरी अच्छी रूही!" रीहानी मेरी ख़ुशामद करने लगा—"मैं तुमको जो माँगोगी, दे दूँगा; पर इसका ज़िक्र न करना।"

मैं खुश होकर बोली—"अच्छा, तो तुम मुझे एक क़लम ला दो, जिस पर सोने की जाली चढ़ी हुई हो।"

'यह तो बहुत क़ीमती चीज़ हुई।" रीहानी ने चिन्तित होकर कहा—"चाँदी की क़लम ला दूँगा।"

"तुमने इस तरह क़ीमत का ख़याल किया, तो मैं साँप की बात कह दूँगी।"

'नहीं, नही।" रीहानी खुशामद करने लगा—"मै जरूर सोने की जाली वाली क़लम ला दूँगा।"

"फिर बेफिक्र रहो . " फिर कुछ देर बाद सोचकर बोली—"पर, ...पर मैं तो दादा को पहाड़ भेजने के प्रस्ताव की असलियत भी जानती हूँ।" मैं जोर से हँस पड़ी।

"एँ, क्या यह बात भी तुम जानती हो ? तुम्हारे तो सारे बदन पर जैसे कान लगे हैं।" रीहानी चकित हो कहने लगा।

"तभी तो," सूफी जलकर बोली—"शाम को दादा के आगे खिलखिला रही थी।"

"हाँ, भला क्यों न खिलखिलाऊँगी ?" मैने अकड़ कर शोखी के साथ कहा। फिर रीहानी को सम्बोधित कर बोली—"लेकिन रीहानी, अगर तुम मुझे सफेद पत्थर का एक इत्रदान खरीद कर ला दो, तो मै इस प्रस्ताव की बात भी दादा से न कहूँगी, नहीं तो आज रात के खाने पर साँप वाली बात भी कहूँगी और पहाड वाली भी।"

"अजीब मुश्किल में जान है। खैर रूही, ला दूँगा, ला दूँगा; तुम उनसे न कहना।"

"हाँ मै उसी वक्त न कहूँगी, जब तुम ये उपहार ला दोगे।"

"ला दूँगा ला दूँगा, वादा करता हूँ।"

इस प्रकार सोने की जाली वाली कलम और सफ़ेद पत्थर के इत्रदान का वादा पक्का हो गया।

अगले दिन निचली मजिल में नाश्ते के कमरे में हम नाश्ता कर रहे थे। वह सुबह बड़ी सुहावनी और सुन्दर थी।

दादा ने उस दिन पीले रग का 'ड्रेसिंग गाऊन' पहिन रखा था। सिर पर काले मखमल का कनटोप था। पेचिश के कारण वे सुबह के समय कपड़े न बदल सकते थे। मेज के सिरेवाली कुरसी पर बैठे बड़े

इतमीनान से चाय पी रहे थे। हम तीनों अपनी-अपनी कुरसियों पर खामोश बैठे अण्डा खा रहे थे। सुबह के समय दादा अपेक्षाकृत कुछ अधिक क्रुद्ध और चिड़चिड़े रहते थे, अतः यह समय हम पर पहाड़ की तरह बीतता था। और आजकल पेचिश के कारण यह शिकायत और भी बढ़ गई थी।

सहसा भोजन के कमरे का बड़ा दरवाजा खुला और एक नाटे क़द का दुबला-पतला आदमी भूरे रंग का भद्दा-सा कोट पहिने, ऐनक लगाये, पागलों की भाँति इधर-उधर देखता हुआ अन्दर आया। वह दादा के जिगरी दोस्त मरजान महाशय थे, जिनसे हमें अत्यधिक घृणा थी।

"आदाब अर्ज़, सर जाफ़र!" बूढ़े मरजान ने टोपी उठा कर, मुस्कराते हुये अपने विशेष ढङ्ग से कहा---"सुनाइये, आपकी पेचिश का क्या हाल है?"

उसके आते ही घृणा से हम तीनों के चेहरे उदास हो गये। हमने आपस में एक दूसरे को देखा, फिर इस बूढे के आगमत पर नाक-भौं चढ़ाने के बाद अनिच्छापूर्वक कहा—"तसलीम।"

"जीते रहो बच्चो! (चचा से) आपने बताया नहीं, अब आपकी पेचिश कैसी है?"

दादा अपने समवयस्क मित्र को देख कर प्रसन्न हो गये। उठ कर हाथ मिलाया, फिर अपने पास वाली कुरसी पर बैठाते हुये बोले --"बस, वही रफ्तार बेढगी जो पहले थी, सो अब भी है।' बेचारा डाक्टर सवाली कोशिश किये जा रहा है। कहो, देहात हो आये?"

"जी हाँ," सुँघनी की एक चुटकी लेकर मरजान कहने लगा—"आप बहुत याद आये।"

"तो दादा।" रीहाना के मुँह से अनायास निकला—"कुछ दिनों के लिये आप भी देहात क्यों नहीं हो आते? आपकी पेचिश को लाभ होगा।" यह कह कर वह कुरसी पर पहलू बदलने लगा।

दादा बोले—"डाक्टर सवाली से राय ले लूँ।"

'मगर," मरजान ने काम बिगाडना शुरू कर दिया—"इसके लिये आबो-हवा बदलने की तो कोई जरूरत नहीं। खाने मे अहतियात करना काफी है।"

रीहानी बूढे मरजान की इस बात पर जल कर कोयला हो गया। उसकी ऐसी ही बातों से हमे घृणा होती थी।

"अच्छा!" मरजान ने कहा—"आजकल ये लडके लडकियाँ दिन भर क्या करती रहती हैं? नौजवान आदमियो को सदा काम में लगा रहना चाहिये।"

"ठीक, ठीक! तुम बिलकुल ठीक कहते हो।" दादा ने जोर से चाय का एक घूँट लेकर कहा।

मरजान ने पूछा—"तुम्हारा कालेज कब खुलेगा, रीहानी?"

"जब लड़कियों का स्कूल खुलेगा।" रीहानी कुछ खीझ-सा गया था।

"और स्कूल कब खुलेगा?"

सूफी बोली –"अभी कहाँ, अभी तो छुट्टियाँ शुरू ही हुई हैं।"

"खुदा करे, न खुले।" मैने बहुत धीमे स्वर में कहा।

परन्तु मरजान ने सुन ही लिया—"एँ, तुम्हे स्कूल इतना नापसन्द है, हमारे जमाने में हम तो.. "

मैं घृणा के साथ उनका मुँह इतने गौर से देखने लगी कि उनकी बात भी पूरी न सुन सकी।

उन दिनो दादा कुछ बीमारी के कारण और कुछ बूढे मरजान के नोन-मिर्च लगाने के कारण हमारी ओर से सन्दिग्ध रहने लगे थे। वे चाहते थे कि हम तीनों कभी इकट्ठा बैठ कर आपस में हँसी-दिल्लगी न

करें। इसलिये नित्य प्रातःकाल वे हममें से हर एक को दिन भर के काम का एक प्रोग्राम सुना देते थे। आज के कामों की सूची उन्होंने सुबह ही सुबह सुना दी थी। सब को एक-एक काम सौंपा गया था। मुझे यह कार्य सौंपा गया था कि दिन भर माली को साथ लेकर उनके पुस्तकालय वाले छोटे से बागीचे में नरगिस के नये पौधे लगवाऊँ तथा चमेली की बेल को साफ कराऊँ। यदि उनमें से कोई सांप निकल आये, तो माली से कह कर जलवा दूँ, या दादा को तुरन्त सूचित कर दूँ। रौशनी को चूँकि सूफ़ी से दूर रखना चाहते थे, इसलिये उसे सदा एक ही काम बताया जाता था, और वह था—समुद्र में तैरना। आज भी यही आज्ञा थी कि वह दोपहर तक समुद्र में तैरने की कसरत करे। यह उसके स्वास्थ्य के लिये लाभदायक बताया गया था। सूफी को गोदाम की सफाई और घर का हिसाब-किताब रखने का भार सौंपा गया था, जिससे कि वह घरेलू कामों में निपुण हो जाय।

दादा जान ने चाय की एक प्याली समाप्त की और दूसरी ले ली। कहने लगे—"चाय के बाद तुम लोग क्या करोगे?"

"हम सब काम में लग जायँगे, दादा जान।" सूफी ने कहा।

यद्यपि प्रोग्राम यह था कि चाय के बाद बाग़ में जा कर ग़ायब हो जायँगे, या चमेली की बेल के नीचे ताश खेलेंगे।

"जैसे?" दादा चिड़चिड़े स्वर में पूछने लगे—"जैसे? आख़िर काम का नाम तो लो, किस काम में लग जाओगी? बातें करना भी तो काम है। कहीं वही न करती रहो।"

"जी नहीं।" सूफी कहने लगी—"मैं तो गोदाम की राह लूंगी।"

"और तुम, बेटा रौशनी।"

"जी, मैं तैरूँगा समुद्र में।"

"और तुम रूही?"

मैं अपना काम भूल गई थी, इसलिये दाय-बायें देखने लगी, फिर कुरसी पर नाखून रगड़ते हुये कहा—"मैं, दादा...?...गोदाम...नहीं-नहीं, समुद्र में तैरूँगी...!"

"जी हाँ!" दादा ने घृणा-मिश्रित स्वर में कहा—"ताकि वहाँ आप रीहानी मियाँ का अकेलापन दूर कर सकें।"

ऐसे मौके पर मरजान अकसर हँस कर नमक-मिर्च लगाता है। कहने लगा—"लडकियों का हाफिजा तेज होना चाहिये, तुम्हारे जिम्मे क्या काम था? इतने ही मे भूल गई ?"

मैं मरजान को खा जानेवाली दृष्टि से देखने लगी।

"निकम्मी लड़की!" दादा जान खफा होकर कहने लगे "मैंने आज सुबह तुमसे क्या दरखास्त की थी? क्यों, यह नहीं कहा था कि मेहरबानी करके बागीचे में माली को लेकर नरगिस के पौधे लगवा देना?"

मैं बोली—"जी हाँ, दादा जान...जी हाँ...याद आ गया।"

"लीजिये, अब इन्हें याद आया।" मरजान कहने लगा—"आज कल की लड़कियों की याद भी, सर जाफर, कैसी कमजोर हो गई है।"

दादा कहने लगे—"मेरी इच्छा है कि तुम लोग अपने जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करो। बेकार हँसी मज़ाक में दिन काट देते हो। आखिर इससे क्या लाभ? जब तुम तीनों एक जगह होते हो, तो मैं सच कहता हूँ, मैं बेहद परेशान हो जाता हूँ।" यह कह कर एक केला छील कर खाने लगे।

भोजन-गृह में मौत का सा सन्नाटा छाया हुआ था। अहमद प्लेटें लिये हुये इधर उधर फिर रहा था। चूँकि दादा ने हर प्रकार की हँसी-दिल्लगी के लिये मना कर दिया था, अतः हम तीनों बिलकुल

खामोश थे और हसरत से देख रहे थे। कभी-कभी नफरत से मरजान को भी देख लेते थे। हम को आदेश देने के बाद दादा जान कुछ सन्तुष्ट से हो गये थे, और बड़े आराम से केले छील-छील कर खा रहे थे।

हम तीनों मुरब्बा खा रहे थे कि सहसा मुझे हँसी आ गई। लेकिन बड़ी कुशल हुई कि दादा जान ने वह सुनी नहीं, नहीं तो बहुत कष्ट होते। मरजान महाशय अखबार पढ़ने मे मग्न थे, परन्तु रीहानी तथा सूफी के चेहरे फक हो गये।

"तुम हँस क्यों पड़ीं?" सूफी ने झुक कर मेरे कान के पास सवाल किया। उसकी आँखों से घबराहट प्रकट हो रही थी।

"कुछ नहीं सूफी, कुछ नहीं।" फिर मुरब्बे की प्लेट पर झुक कर मैंने कहा---"वह बात इस समय दादा से कह दूँ?"

सूफी दीवार की ओर घबरा कर देखने लगी। रीहानी रूमाल से मुँह पोंछता हुआ, तुरन्त कुरसी से उठ खड़ा हुआ।

"मैं---अभी बाजार जाता हूँ।" उसने मेरी ओर झुक कर बहुत धीमे स्वर में कहा---"तुम्हारा इत्रदान खरीद लाऊँगा।"

दादा और मरजान इस बीच उठ गये थे।

"न लाये तो याद रक्खो इसका नतीजा ..और वह सोने की कलम।"

"वह मैं अपनी वाली तुम्हें दे दूँगी।" सूफी ने कहा।

मैं बोली---"बैठो, मुरब्बा खाओ रीहानी, चचा मरजान और दादा तो पुस्तकालय जा चुके। लूडो खेलोगे?"

सूफी बोली---लूडो, रूही! पर रीहानी को तैरना है।"

"अजी कौन तैरेगा? उठा रक्खो इन बातों को!" रीहानी एक अँगड़ाई लेकर बोला---"बारह बजे बाग़ में जाकर कुए मे एक डोल पानी ऊपर डाल लूँगा और दादा के पुस्तकालय में चला जाऊँगा।"

मैं मुस्कराई। एक नया उपहार मेरी आँखो के सामने नाचने लगा। "और यदि यह बात दादा से कह दूँ तो? कोई उपहार दो, तो न कहूँगी।"

"और यदि तुम्हारी लूडो वाली बात मै कह दूँ?" रीहानी मुँह चिढा कर कहने लगा।

मै डर कर चुप हो गई।

पर घण्टे भर में सूफी और रीहानी ने उपहार मेरी सेवा में उपस्थित कर दिये।

दादा की आज्ञा के अनुसार हम तीनों अपने-अपने काम के लिये तैयार हो गये। रीहानी बाजार से उपहार लाने के बाद तैरने के लिबास मे आकर खडा हो गया! सूफी गोदाम की सफाई के लिये 'एपरॉन' पहिन आई। मैं हाथ में खुरपा लिये माली को ढूँढने के उद्देश्य से निकली। हम तीनों बाग की सीढी पर एकत्रित हुये। अब प्रयत्न करने पर भी किसी का जी दादा की आज्ञा का पालन करने को न चाहता था।

वास्तव में दिन बहुत सुन्दर तथा सुखद था। ऐसी ऋतु में तीन समवयस्क मित्रों का एक दूसरे से अलग रहना, आप सोचिये, कितना जुल्म है। वृक्षों की झुकी हुई हरी-हरी टहनियों पर सुनहरी धूप चमक रही थी। चमेली की बेलों में प्रातःकाल के मधुर कंठवाले पक्षी अभी तक सीटियाँ बजा रहे थे। फव्वारों में से पानी उबल रहा था। लाल-लाल गुलाब खिले थे, पीली सूर्यमुखी भी यौवन पर थी। कभी बादल समुद्र की ओर से आ जाते थे, कभी सुनहरी धूप निकल आती थी। कभी-कभी किसी दूर के जङ्गल से बढई की 'खुट-खट' सुनाई दे जाती थी, और कभी समुद्र की लहरों का मद्धिम शोर।

रीहानी ने कहा—"आओ पहले थोड़ी देर मनोरजन करें, फिर काम में लगेंगे।"

लिया। परन्तु बातचीत का सिलसिला जारी था कि मरजान ने केवल इतना कहा—"यह क्या?" और फिर अपनी बात शुरू कर दी। उनकी बात सुनते-सुनते एक कार्ड उठा लिया, उसे मरोड़ कर बत्ती बना ली, फिर उससे कान खुजाने लगा। दोनों किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर बातचीत कर रहे थे और ठीक उसी पेड़ के नीचे खड़े थे, जिस पर मैं छिपी थी।

"तो फिर सर जाफर?" मरजान कह रहा था—"कुछ सोचा-साचा भी आपने?"

दूर से रीहानी दादा के सामने तैराकी के भीगे कपड़े पहिने गुजर रहा था।

"अभी मैंने कुछ तय नहीं किया।" दादा ने कहा।

मैं ध्यान से सुनने लगी।

"अब देर किस बात की है?" मरजान पूछ रहा था।

दादा बोले—"सूफी के लिये मैं तो नौजवान डाक्टर सवाली को बहुत पसन्द करता हूँ। वह सुन्दर भी है और सुशील भी।"

मेरा रंग उड़ गया।

"बिलकुल ठीक जोड़ा होगा। फिर रुकावट क्या है। सवाली भी प्रार्थना कर चुका है। लड़की भी जवान हो गई है। नौजवान लड़के लड़कियों का घर में कुँआरे बैठना अच्छा नहीं लगता।" मरजान ने अपना कान खुजाते हुये कहा।

"हाँ, हाँ, मैं खुद समझ सकता हूँ। रीहानी, सूफी और रूही का ज्यादा मेल-जोल ठीक नहीं। रूही तो स्कूल खुलने पर वापस चली जायगी। मुझे सूफी की फिक्र है।" दादा जान ने ठण्डी साँस भर कर कहा।

मरजान बोला—"तो फिर शादी हो ही जाती, तो अच्छा था।"

"वह पेड़ पर कौन बैठा है ?" दादा जान अपनी ऐनक में से मुश्किल से मुझे देख कर कहने लगे।

अब तीनों मेरी ओर देख रहे थे।

म एक एक टहनी से लिपटती हुई तेजी से नीचे उतर रही थी।

"दादा जान, दादा जान ." मैं कह रही थी—"मैं नरगिस के पौधों का काम खतम करके आई थी, और अब आपकी आज्ञा के अनुसार चमेली की बेल को साफ करा रही थी कि मोटा साँप ..आपका खयाल ठीक निकला। इसमें से एक मोटा सा साँप निकला। मैं क्या करती ? चीख मार कर ऊपर चढ गई। देखिये, खुरपा तक मेरे हाथ में रह गया। वह अभी गिरा था।"

"और साँप को मारा भी ?" दादा जान घबरा कर बोले।

मरजान बोले—"ऐसी रोशनी में साँप सूँप कहाँ, सर जाफर।"

"निकल ही आते हैं, मरजान।" दादा कहने लगे।

"जान बची लाखों पाये!" कहती हुई मैं बरामदे की ओर भागी।

मैं बरामदे के जीने पर से होती हुई तोते के पिंजडे तक पहुँची ही थी कि उधर से रीहानी तैरने के लिबास में भीगा हुआ दिखाई पड़ा।

'ओह रीहानी!' मैं कहने लगी—"तुम लोग तो भाग गये, पर मेरी बुरी गत बनी।"

खुरपे की घटना सुन कर वह जोर से हँस पड़ा।

'फिर क्या हुआ ?'

"क्या हुआ; जान बचा कर भाग आई।" यह कहते हुये तोते के पिंजड़े के पास मैं जा खड़ी हुई और कुछ सोचने लगी।

'हयॅ !' रीहानी पास आकर मेरा चेहरा ऊँचा करके देखने लगा—"तुम बहुत गम्भीर दीख रही हो, क्या सोच रही हो ? कोई नई बात !"

"हा, बिलकुल नई बात। ऐसी कि तुम फड़क उठोगे, बल्कि यह कहना चाहिये कि भड़क उठोगे।"

"वह क्या, वह क्या ?" रीहानी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"न, न..." मैंने कहा—"पॉच रुपये का नोट दोगे, तो बताऊँगी।"

"तुम्हारा लालच बढता ही जाता है।" रीहानी ने बहुत बिगड़ कर कहा—"खैर, मुझे तुम्हारी बात सुनने का शौक नहीं। मुफ्त में पॉच रुपये क्यों दूॅ। फिजूल की कोई बात होगी। मै नहीं सुनूॅगा।"

"न सुनो।" मैंने कहा—"वह बात सूफी के सम्बन्ध में थी।"

इतना सुन कर वह बेचैन हो गया। "क्या कहा ? सूफी के बारे मे ? मेरी अच्छी रूही ! मुझसे कह दो।"

"फिर रुपये दोगे ?" मैंने तुनक कर कहा।

"इस वक्त सिर्फ दो दे सकता हूॅ।" उसने लाचार होकर कहा।

"बाकी तीन कब दोगे ?" मैंने तुरन्त सवाल किया।

"रूही, तुम यहूदियों की सी बाते करती हो। बड़ी होकर पूरी 'शाईलाक' बन जाओगी।"

"तब वह बात भी नही बताऊँगी। ऐसी बाते जानने के लिये तो रीहानी, दस रुपये भी कम हैं। जिन्दगी का मामला है जिन्दगी का !" मैंने भौंहें चढ़ाकर कहा।

रीहानी परेशान सा हो गया। कुछ सोच कर बोला—"अच्छा चुड़ैल, ले !" उसने पॉच रुपये का एक नोट मेरे मुॅह पर मारते हुये कहा—"अब कुछ बता तो।" यह कह कर वह एक खम्भे का सहारा लिये खड़ा हो गया।

"बात यह है कि दादा और चचा मरजान सूफी को डाक्टर सवाली के साथ ब्याहना .."

"हर्य...!" रीहानी का मुँह घृणा तथा क्रोध से खुले का खुला रह गया—"क्या कहती हो, रूही ! हँसी तो नही करती ?"

"विश्वास करो, उनका यही इरादा है। इसके बाद मैंने उन लोगो की सब बाते कह सुनाईं, जिन्हें सुनकर वह लाल हो गया। गुस्से से बेताब होकर कहने लगा—"मै इस कमबख्त मरजान को मुर्गी की तरह हलाल कर डालूँगा, वह ही दादा को बिगाड़ता है। मै सवाली की गर्दन मरोड़ दूँगा, क्या समझ रक्खा है इन लोगों ने। और दादा को क्या हो गया ? लोगों को दम्पति के चुनाव की जरा भी योग्यता नहीं। भला, बताओ तो कहाँ वह दुष्ट डाक्टर सवाली और कहाँ मेरी नन्हीं सी खूबसूरत सूफी ! कोई जोड़ है ? दादा को सूफी का विवाह मेरे साथ करने में इसके अतिरिक्त और क्या आपत्ति थी, कि मैं अभी पढ रहा हूँ। पर मैं उमर भर पढता थोडे ही रहूँगा ?...इसके अलावा दादा की सारी सम्पत्ति .आखिर हम तीनों ही के हिस्से मे आयगी।"

क्रोध की हालत में रीहानी, जो मन में आया बके चला जा रहा था। इधर मैं पाँच रुपये लेकर बहुत प्रसन्न थी और सोच रही थी इन्हें कैसे खर्च करूँ।

उन दिनों में बहुत ही प्रसन्न रहा करती थी और नये-नये उपहार प्राप्त करने की बातें सोचा करती थी। ताक मे लगी रहती थी कि कब मौका मिले और कब इस प्रेमी जोड़े से नया उपहार वसूल करूँ। अब तो यह हाल हो गया था कि दूर से जहाँ कहीं रीहानी को देख लेती, झट से हाथ फैला देती थी। कई बार दादा की उपस्थिति में भी यह इशारा हो चुका था। रीहानी दाँत पीसता हुआ खिसियाकर कमरे से बाहर चला जाता। हर समय बढिया कीमती चीजें मेरी आँखों में नाचा करती थीं। अब 'सेण्ट' की शीशियों और चाकलेट के डिब्बों का समय बीत चुका था, अब तो मै भारी भारी चीज़ों की ताक मे रहती थी। कई

चीजे वसूल भी कर चुकी थी जैसे, अपने वस्त्रागार के दरवाजे के लिये एक चीनी रेशम का परदा जिस पर समुद्र का सुन्दर दृश्य-चित्र बना हुआ था; शयन-गृह के कीमती सोफ़े के लिए एक कीमती कुशन जिस पर जङ्गली छिपकली का चित्र था। आदि-आदि।

एक दिन हिम्मत करके मैंने एक बहुत सुन्दर, सुनहरे शाल की फरमाइश कर दी, जो इसी हफ्ते दूकान पर नया-नया आया था।

यह सुन कर रीहानी जल गया—"लालची लड़की! इतनी कीमती चीज भला कैसे दूँ? इस महीने की मेरी सारी छात्रवृत्ति तुम्हारे लिये उपहारों में भेट हो गई। अब भी जी नहीं भरा? बेचारी मेरी सूफी मुँह ताकती रह गई। उसे एक चीज निशानी के रूप में भी इस महीने न दे सका।"

"तो फिर मुझे क्या?" मैंने चिढ कर कहा—'मैंने तुम लोगों के लिये थोड़ी मेहनत की है? थोड़ी खबरे दी हैं? दादा से थोड़ी बातें छिपाई हैं! यही इसका फल है?"

वह कुछ प्रभावित सा हो गया। लज्जित होकर बोला—'मगर इतनी क़ीमती चीजें तो न माँगा करो!"

"अच्छा खैर..." मैंने कुछ सोच कर कहा—"सुनहरा शाल न सही, कम से कम रेशम के फूलवाला सफेद शाल ही ला दो।"

"मगर रूही..."

मैंने डाँट बताई—"तुम इस तरह अगर-मगर करोगे, तो मैं दादा और चचा मरजान की तरफ हो जाऊँगी और उनकी कोशिशों के सफल होने में सहायक बन जाऊँगी। तब क्या करोगे?"

"मैं तुम्हारी शादी उस गँवार सवाली से करा दूँगा।" उसने चिढ कर कहा।

"अच्छा...?" मैने क्रुद्ध दृष्टि से घूर कर कहा—"यह दिमाग ! अब इसका नतीजा देखना ।"

उसी दिन संध्या समय मैं हाथ मे सितार लिये बार्जे से होकर बाग में जा रही थी, जिसमें कि सूफी और रीहानी से बिलकुल अलग अपना मन बहलाऊँ। उन लोगों का मैंने बहिष्कार कर रक्खा था। रास्ते में पुस्तकालय के दरवाजे मे दादा जान अपने मोटे से लम्बे कोट में दिखाई पड़े। पीले रग की नेकटाई भारी कोट मे से कुछ-कुछ दिखाई पड रही थी। वे सूफी से बाते कर रहे थे—"तो, तुम कल सब कुछ कर दोगी न ? साढे चार. .याद रखना, रक्खोगी न याद...?"

यह सुन कर मैं चकित हुई कि आखिर यह मामला क्या है ? सिर उठा कर देखा, सूफी का चेहरा दिखाई पडा, हर्ष से गुलाब की तरह प्रफुल्लित और लाल हो रहा था। मेरे लिये यह बात एक रहस्य बन गई।

"सब कुछ हो जायगा दादा जान, सब कुछ हो जायगा।"

हयँ ! मैं बहुत ही चकित हुई कि सब कुछ क्या हो जायगा ? उसकी आवाज हर्ष से बाँसुरी जैसी हो गई थी।

दादा धीरे-धीरे कदम उठाते पुस्तकालय में चले गये। सूफी दो वहीं खड़ी बन्द दरवाजे को देखती रही। मैं हैरान थी कि क्या मामला है। परन्तु चूँकि सूफी और रीहानी से मुझे दोपहर से चिढ हो गई थी बल्कि मैं उनसे बदला तक लेने को तैयार हो गई थी, इसलिये मैंने उससे इन बातों का मतलब पूछना उचित न समझा।

थोड़ी देर में जीने पर किसी के भागने की आवाज आई। फिर कोई बाग में कूद गया। मैं खिड़की से लगी हुई धीरे-धीरे उधर गई कि देखूँ, कौन था। देखा तो सूफी सेब के पेड के नीचे रीहानी के कमरे के पास खड़ी है। "रीहानी...री.. हानी...जल्दी खिड़की में आओ, एक खुशखबरी !..." हर्ष से उसके मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी।

रीहानी महोदय का सुनहरा सिर खिड़की से बाहर निकला। उसने गहरे हरे रग के रेशम की कमीज पहिन रक्खी थी, कॉफी के रंग की ने कटाई थी सुनहरे-सुनहरे बाल माथे पर बिखरे थे। झाँकते ही वह मुस्कराया और पूछा—"मेरी चिड़िया, क्या बात है?" यह कहता हुआ खिड़की में चढ़ बैठा।

खिड़की के पास जाकर 'चिड़िया' सिर उठा कर बोली—"कल... दादा जान और चचा जान साढे चार की गाड़ी से एक दिन के लिये पहाड़ जा रहे हैं।"

"ऍ, सच कहो...?" रीहानी खुशी मे तालियाँ बजाने लगा। झुक कर दोनों हाथों से सूफी को उठाया और खिड़की में बैठा लिया। दोनों बन्दरों की तरह बैठे थे। मैं मन ही मन सुलग रही थी।

"मेरी जान.. मेरी जान " रीहानी के मुँह से शब्द फिसल रहे थे—"क्या मै स्वप्न देख रहा हूँ? दादा जान और चचा जान पहाड़ जा रहे हैं? . वर्षों की कामना आखिर आज पूरी हुई। आखिर विधाता को हमारे ऊपर दया आ ही गई।" एकदम से वह किसी सोच में पड़ गया और फिर बोला—"वक्त नहीं खोना चाहिये। कल शाम को हमारी कामनाएँ पूर्ण होंगी, आशाएँ सफल होंगी और किस्मत चमकेगी।"

यह कह कर वह पागलों की भाँति फिर तालियाँ बजाने और हँसने लगा। सूफी ने निश्चिन्तता से सामने झुक कर एक सेब तोड़ लिया और दाँतों से कुतर-कुतर कर खाने लगी।

"देखो, मेरी योजना यह है।" रीहानी सेब का एक टुकड़ा जल्दी जल्दी चबाते हुये बोला—"कल शाम को उस पाजी डाक्टर सवाली को चाय पीने बुलाया जाय..."

"ऍ?" सूफी ने चकित हो कर सेब खाना बन्द कर दिया और अपना नन्हा सा मुँह खोल दिया—"ऍ रीहानी, यह क्या?"

"ऍ क्या?" रीहानी बोला—"इसके सिवा चारा नहीं, इसीलिये तो मैं अर्से से दुआएँ माँग रहा था कि दादा पहाड़ पर जावें। कल पाँच

बजे जब कि दादा की गाड़ी प्लेटफार्म छोड़ चुकेगी और हम स्वतंत्र होंगे, डाक्टर सवाली को आमन्त्रित किया जायगा।"

"आखिर इससे तुम्हारा मतलब क्या है, रीहानी ?" एक सेब खत्म हो चुका था, दूसरे की नीयत थी।

रीहानी बोला—"मतलब ?.. जरा दिमाग ठीक किया जायगा और क्या ?"

सूफी खुश हो गई और एक सुरीली-बारीक चीख उसके मुँह से निकली।

"कल वह गधा चाय पर आ गया, तो उसके खूब कान ऐंठे जायँगे, खूब खबर ली जायगी, और ऐसी तोबा कराई जायगी कि फिर भूल कर भी कभी तुम्हारा नाम न लेगा। खूब-खूब डाँटूगा; लम्बी-लम्बी मूँछें पाल रक्खी हैं कमबख्त ने, खूब नोचूँगा, कहूँगा कि अगर फिर कभी सूफी के साथ विवाह की कल्पना भी की, तो कुएँ में डुबकियाँ खानी पड़ेंगी, बाग में इमली के पेड़ में उलटे लटका दिये जाओगे।"

मैं अपनी जगह दबी-दबाई खड़ी मुस्करा रही थी और उनकी योजनाओं को बड़े ग़ौर से सुन रही थी।

सूफी दयनीय आकृति बनाकर कहने लगी—"हाँ, देखो तो रीहानी, दादा भी जुल्म करते हैं, मुझ जैसी लड़की का ब्याह उस मूँछों वाले गधे से...?"

"तोबा करो! जब तक मैं जीवित हूँ, यह कैसे हो सकता है ? (ठहाका लगा कर) हाँ, अगर रूही का विवाह दादा उससे कर दें तो सचमुच बड़ा मजा आ जाय। (दूसरा ठहाका) तब तो उस दुष्ट और हठी लड़की की सारी शेखी धरी की धरी रह जाये। इस शैतान की सास ने हमारी ज़िन्दगी का सारा आनन्द मिट्टी में मिला रक्खा है।

मैं अभिमान के साथ मुस्करा कर कहने लगी—'होती कहाँ, तुम लोगों के पीछे खड़ी थी।'

'पीछे!' सूफी को करीब-करीब मूर्च्छा आ गई। रीहानी तुरन्त खिड़की से नीचे कूद पड़ा और मेरे पास आकर बड़े प्रेम से मेरी ठोढी पकड़ कर बोला—'देखो, रूही .'

मैं चिढ कह उसे हटाने लगी और चेहरा दूसरी ओर फेर लिया—'अब तुम लोग मेरे हाथ मे हो।'

रीहानी डर गया—'यह बडी बुरी बात है कि ..'

'क्या बुरी बात है?' मैने खिसिया कर पूछा।

'कि छिप कर दूसरों की गुप्त बातें सुनी जायें।'

'अच्छा!' मैंने मुस्करा कर कहा—'वे आप लोगों की गुप्त बातें थीं? मुझे पता न था, माफ करना।' यह कह कर मै नहर की ओर जाने के लिये बढी। रीहानी ने मेरा हाथ पकड़ लिया, 'तुम सब बातें सुन चुकी हो, तो देखो रूही इसमे हमारा साथ दो बड़ा मजा आयगा। कल सवाली की मरम्मत की जायगी। तुम रूठी रहोगी, तो इसमे सरासर तुम्हारा ही नुकसान है, मजा न रहेगा।'

मैं इन मीठी-मीठी बातों का मतलब खूब समझती थी। मुस्करा कर बोली—'जी हाँ, सरासर मेरा ही नुकसान होगा। क्या कहना है! अच्छा यह तो कहो कि अगर मैं तुम्हारी मदद करूँ तो मुझे क्या उपहार दोगे? पहले यह तय हो जाना चाहिये।'

'फिर तुमने वाहियात बाते शुरू कर दी!' रीहानी बिगड़ कर बोला।

'अच्छा, तो तुम रहस्य का मूल्य कम समझते हो। मुझे अपनी 'ड्रेसिङ्ग टेबिल' पर रखने के लिये अगर मछली की शक्ल की एक इत्रदानी ला दो, तो मैं यह रहस्य गुप्त रख सकती हूँ, नहीं तो...'

'तफरीह क्या होगी, सारा दिन वकील के यहाँ देखने-दिखाने और मसविदे तैयार कराने में खत्म हो जायगा।'

'अजी, वकील से छुट्टी पाने के बाद सैर के लिये निकल जाइयेगा।'

'देखा जायगा।' दादा ने कहा---'मुझे तो मसविदे की बड़ी फिक्र है।'

'फिक्र की कोई बात नही सर जाफर ! खुदा ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा।'

'देखना बेटी।' दादा ने सूफी से कहा—'छोटे हैण्डबेग में मेरे कागज और दस्तावेजे रख देना, यही सब से ज़रूरी चीजे हैं। पहाड़ पहुँचते ही मुझे इनकी जरूरत होगी। वकील को दिखाने हैं।'

मरजान बोले—'ये कागज वागज तो आप खद ही बेग में रख लेते तो अच्छा था। ये लड़कियाँ क्या जाने ?'

सूफी ने खीझ कर मरजान को देखा—'आप बेफिक्र रहें।' यह कह कर सूफी ने सबसे पहले उसी बेग में मरजान चचा के कथानानुसार 'कागज वागज' भरे और उसे बन्द करके मेज पर रख दिया। मै भी उसकी मदद कर रही थी और भाग-भाग कर चीजे उठा लाती थी। कभी-कभी रीहानी समुद्र से निकल कर खिड़की मे आ बैठता और चचा तथा दादा की निगाह बचा कर मुस्कराता और भाग जाता था। उस पर दृष्टि पड़ते ही मै ओठों ही ओठों कह देती—'मछली की शक्ल की शीशी !' वह मुँह चिढा कर भाग जाता। कभी मुझे सन्तुष्ट करने को विश्वासपूर्ण ढङ्ग से सिर हिला देता था। खुशी के मारे फूला न समाता था। मन ही मन प्रार्थना कर रहा होगा कि शीघ्र ही शाम हो जाय।

दोपहर को भोजन की मेज पर दादा जान की उपस्थिति में दोनों अपनी प्रसन्नता को बडी मुश्किल से छिपा सके। आज सयोग से मर-

मुस्कराने लगा। शायद खयाल आ गया हो कि आज शाम को सूफी से भेंट होगी। मूर्ख !"

मैंने पूछा—"और मेरा उपहार ?"

वह उस समय खुशी के मारे फूला नहीं समा रहा था। जवाब में मुझे मुँह चिढा दिया। मैं आग-बबूला हो गई।

किसी न किसी तरह शाम हुई। इस बीच मैंने कई बार अपने उपहार की माँग की, लेकिन हर बार इस फर्माइश को बेमौका कह-कह कर टाल दिया गया। दो-एक बार टालने के साथ-साथ मेरे स्वभाव और प्रकृति के विषय में भी बड़े कटु और खराब शब्दों का प्रयोग किया गया, जो स्वभावतः मुझे बहुत ही बुरे लगे, और मुझे उन लोगों के वे नीच विचार याद दिलाने का कारण बनते रहे, जो उन्होंने मेरे तथा डाक्टर सवाली के विषय में प्रकट किये थे। अतः मैं मन ही मन सुलगती हुई बदला लेने के लिए बौखलाई फिर रही थी। एकाएक मुझे एक बात सूझी। धड़कते हुए हृदय से बड़े हाल में से निकली और बाहर बरसाती में चल दी, जहाँ दादा के लिये कार खड़ी थी। दादा स्टेशन जाने के लिए बिलकुल तैयार हो चुके थे सिर्फ चश्मा लगाने की देर थी, सब असबाब कार पर लद चुका था।

मैंने कार के पास जाकर दम लिया। उसकी सीट पर से एक छोटा-सा हैण्डबेग हाथ मे ले, फिर वापस भागती हुई हॉल में से ड्राइंग-रूम में पहुँची और एक छोटी आल-मारी पर उसे रख दिया।

फिर बडे हॉल मे गई जहाँ दादा बीचों-बीच पोर्टिको की ओर जा रहे थे। दायें-बायें रीहानी और सूफी थे। आगे-आगे चचा मरजान चले जा रहे थे। मैं भी जाकर उस जुलूस में शामिल हो गई। रीहानी के चेहरे पर गुप्त प्रसन्नता तथा मुस्कराहट खेल रही थी। इधर दादा

अच्छा, अब तुम लोग जल्दी-जल्दी चाय की तैयारी करो। वह गधा आ ही रहा होगा। आओ, मैं भी मदद करूँगा। किसी नौकर को न बुलाओ, यह ठीक नही।"

वह अपने बदले की चिन्ता मे था और मेरा मन अपने बदले की कल्पना मे लगा था।

हम तीनों डरते हुये खाने के कमरे में पहुँचे। सूफी जल्दी-जल्दी 'पेस्ट्री' निकाल कर तश्तरियों में सजाने लगी। मै धडकते हुये हृदय से बिजली के चूल्हे पर चाय का पानी गर्म कर रही थी। रीहानी 'ट्रे' सजा कर ड्राइङ्ग-रूम मे ले जा रहा था और उसके साथ हर्षपूर्ण स्वर में गा रहा था—

"मैं आफत का परकाला हूँ,

सौ हिकमत फितरत वाला हूँ।"

मै चायदानी में पानी डाल रही थी, रीहानी के हाथ में ट्रे था। सूफी मेज पर चम्मचे रख रही थी कि अचानक बाहर सूचना की घण्टी बजी।

'यह लो ' सूफी के मुँह से निकला—"पहुँच गया।"

दौड कर हमने सब सामान ठीक किया। जब सब कुछ जम-जमा गया, तो सूफी और मैं सोफों पर बैठ गई। रीहानी महोदय अपनी नेकटाई ठोक करते हुये चेहरे पर मुस्कान पैदा करते, स्वागत के लिये परदे तक गये।

"आइये, डाक्टर सवाली! आदाब अर्ज।"

"तसलीम।"

सवाली महोदय इस असाधारण स्वागत पर कुछ घबरा से गये। मूर्ख से लग रहे थे। आदत के अनुसार आँखें झपकाते हुये एक छोटी

"यह तोस लीजिये, डाक्टर साहब ! मीठे तोस ।" मैंने प्लेट आगे बढा दी—"सूफी ने बनाये हैं ।"

डाक्टर सवाली ने मुस्करा कर सूफी पर एक रहस्यपूर्ण नजर डाली और एक तोस ले लिया और एक खास अदा के साथ कहा—"शुक्रिया ! शुक्रिया !"

"एक और टुकडा ।" मैंने कहा ।

"शुक्रिया ! ।शुक्रिया !" कहते हुये दूसरा टुकडा भी ले लिया ।

"यह केक लीजिये, हमने घर पर इतवार को तैयार किया था ।" रीहानी ने कहा ।

"रूही, यह गाजर का हलुवा भी डाक्टर साहब को दो ।" सूफी ने धीरे से कहा ।

"हाँ, यह लीजिये ।" मैंने हलुवा उसकी ओर बढाया ।

बेचारा सवाली आज किसी बात से इनकार ही न कर सकता था । उसकी प्लेट में चीजों की एक नन्ही-सी पहाड़ी बन गई थी ।

रीहानी ने बढ कर दूसरी खाली प्लेट उसके आगे बढा दी । कहने लगा—"बिस्कुट इसमें लीजिये ।"

"हाँ, चाकलेट और बिस्कुट ।" सूफी कहने लगी ।

शुक्रिया ! शुक्रिया !"

डाक्टर सवाली इस खातिरदारी से कुछ परेशान-सा था सिकुड़ी हुई मूँछों मे से होकर उसका चेहरा घबराया-सा दिखाई पड़ रहा था ।

जब सब कुछ हो गया, तो रीहानी ने एक सोफे पर बैठ कर सिगरेट सुलगा लिया और ।बड़े इतमीनान के साथ कहने लगा—"देखिये, डाक्टर सवाली ! अब मे आपसे एक बड़े ही आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण विषय पर बात करना चाहता हूँ ।"

सवाली परेशान हो गया था। बात काट कर बोला—"आखिर, कुछ कहिये भी तो।"

रीहानी का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। "हॉ-हॉ, कहूँगा, सुनिये कान खोल कर, अच्छी तरह सुनिये ..कि अगर आपने.. याद रखिये, अगर आपने .."

मेरे कानों को दूर से दादा की कार का 'हार्न' सुनाई दिया, पर रीहानी के क्रोध का पारा क्षण-प्रतिक्षण बढ रहा था उसने सुना ही नहीं। वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था—"अगर आपने...याद रखिये, अगर आपने ..।"

उसी समय कार बरसाती में आ खड़ी हुई, और दादा जल्दी-जल्दी सीढियों पर चढते हुये ड्राइङ्ग-रूम में आ खड़े हुये।

"एं !" उन्होंने आते ही एक लम्बी 'एं' की। सूफी को मूर्च्छा-सी आने लगी। रीहानी का लहू जम गया। मैं मुस्करा रही थी।

डाक्टर सवाली ऑखे झपका- झपका कर आश्चर्य-चकित अवस्था में थूक निगलने की कोशिश कर रहा था।

"दादा ··" सूफी के मुँह से चीख निकली।

"दादा .."रीहानी के मुँह से चीख निकली।

सवाली सभॅल कर कहने लगा—"हॉ जनाब, पहले हमारा मामला निबट जाना चाहिये। यह बताइये कि आप मुझसे क्या कह रहे थे कि याद रखिये, अगर आपसे...?"

रीहानी घबरा सा गया। पागलों की तरह दायें-बाय देखने लगा। फिर सम्भल कर बोला—"मै यह कह रहा था कि याद रखिये, अगर आपने दादा को इस बार पेचिश का अच्छा नुसखा न दिया तो..."

सवाली का सिर झुक गया।

रीहानी और सूफी आपस मे एक दूसरे को देख रहे थे और ऑखों
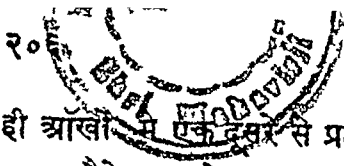
ही आँखों में एक दूसरे से प्रश्न कर रहे थे कि यह क्या हुआ ? दादा वापस कैसे आ गये ? मरजान को क्या हुआ ?

दादा दो मिनट मूर्त्तिवत् चुपचाप खड़े देखते रहे।

आखिर सूफी उठी। "दादा, प्यारे ! आप वापस कैसे आ गये, चचा मरजान कहाँ हैं ?"

दादा गरज कर बोले—"फिर क्या करता, वापस कैसे न आता ? तुमने इतनी ताकीद करने पर भी मेरा वह हैण्डबेग, जिसमें दस्तावेज थे, मेरे साथ नही रक्खा। मरजान अपने घर चला गया।"

सूफी चकित होकर बोली—"खुदा की कसम दादा जान, मैने रख दिया था, रख दिया था पिछली सीट पर।"

"फिर वह गया कहाँ ?" दादा बिगड कर बोले।

मै चुपके से अपनी जगह से उठी, आलमारी पर से वह बेग उठा कर दादा जान को दे दिया—"देखिये दादा, यहाँ रखा हुआ है। सूफी ने कार मे रख तो दिया था, पर मालूम होता है कि किसी ने फिर इसे कार मे से निकाल लिया।"

यह कह कर मैं सूफी और रीहानी को देखने लगी। दोनों दाँत पीस रहे थे और मेरे मरने की दुआयें माँग रहे थे।

"आज तो मेरा जाना रह गया।" दादा ने गरज कर कहा। अब उनकी दृष्टि एकाएक डाक्टर सवाली पर पड़ी। कुछ चकित से हो कर पूछा—"एँ, डाक्टर सवाली ! आप कैसे चुप-चुप बैठे हैं ?" अपने भावी दामाद को उदास देख कर दादा ने प्रश्न किया।"

रीहानी भी कहने लगा—"हाँ डाक्टर, आप उदास क्यो हो गये ? लीजिये सिगरेट पीजिये।"

"शुक्रिया। मुझे नही चाहिये।" सवाली ने सूखे मुँह से कहा।

"यह आप कैसे हो रहे हैं ?" दादा ने पूछा।

रीहानी घबराया हुआ सा था कहीं दादा को उदासी का भेद न मालूम हो जाय। कहने लगा—"हाँ डाक्टर साहब! आप यह कैसे हो रहे हैं? एक प्याली कॉफी पीजियेगा?"

"नहीं जनाब, नहीं।"

रीहानी हँस पड़ा—"ओह!...अब मैं समझा, दादा! मै डाक्टर साहब से जोरदार शब्दों में कह रहा था कि वे आपकी पेचिश के बारे मे अधिक खयाल रक्खे। और कोई ऐसा नुस्खा सोचे कि जल्द ही पेचिश ..शायद मेरा यह निवेदन पसन्द नहीं किया गया। डाक्टर साहब कुछ नाराज से .. ..(हँस कर) लीजिये, लीजिये, सिगरेट लीजिये।"

मुझे रीहानी के सफल अभिनय पर आश्चर्य हो रहा था। हँसी भी आ रही थी।

"सर जाफर!" सवाली आँखें झपका-झपका कर दादा से कहने लगा—"मिस्टर रीहानी ने मुझे बहुत अनुचित शब्द कहे हैं।"

"एँ रीहानी।" दादा घूम कर पूछने लगे—"क्यों?" फिर चाय का ढेरों सामान देख कर बोले—"आखिर यह सब क्या है? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

रीहानी बोला—"दादा जान, बात यह है कि आज कई हफ्तों से मुझे रात के समय नीद नहीं आती।"

"क्यों?"

"परेशानी के कारण दादा जान! जब से आपको पेचिश हुई है, और डाक्टर सवाली का इलाज शुरू हुआ है, सच सकता हूँ, रात के सन्नाटे में बहुधा आप ही के बारे में सोचता हूँ। खुदा आपको जिन्दा रक्खे। (आवाज में दर्द पैदा करने की चेष्टा करते हुये) मैं आपके आगे अपनी व्याकुलता का हाल कह कर आपको परेशान नहीं करना चाहता था। आज जब आप बाहर गये, तो मैंने उचित समझा कि

डाक्टर साहब को चाय पीने बुला लूँ और आपकी अनुपस्थिति में आपके स्वास्थ्य के बारे में इनसे पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करूँ ।"

दादा का रंग धीरे-धीरे अपनी असली हालत पर आता गया। बीच में एक बार तो मुस्करा भी पड़े। फिर रीहानी को प्रेम से देख कर बोले—"मेरे बच्चे, परेशान न हो, खुदा ने चाहा तो मैं जल्द ही अच्छा हो जाऊँगा। डाक्टर सवाली, आपको बुरा नहीं मानना चाहिये परेशानी की हालत में आदमी की ज़बान उसके क़ाबू में नहीं रहती। कई बार मेरा यह हाल हो चुका है..."

"आप सूफी से पूछ लीजिये, दादा।" रीहानी दादा की बातें सुन कर शेर हो गया—"आप सूफी से पूछ लीजिये दादा, मेरा दिमाग कितना खराब हो रहा है। क्यों सूफी ?"

"हाँ दादा...बहुत ही।"

इसके बाद डाक्टर सवाली विदा हो गये। दादा ऊपर चले गये। मैं अपने बदले की सफलता पर मुस्कराती हुई कमरे से बाहर निकली।

आह! उस रात की कहानी मैं आपको क्या सुनाऊँ, कि बाग में मेरी क्या-क्या दुर्गति हुई। खुदा दुश्मन को भी बचाये। मैं ड्राइङ्ग-रूम से निकल कर बाग के फव्वारे के पास नासपाती के पेड़ के नीचे खड़ी मुस्करा रही थी। दूर बाग़ की नीची दीवार से चन्द्र उदय होता दिखलाई पड रहा था। कहीं-कहीं ताड़ के पेड़ों पर कोई कौवा चाँदनी को सवेरे की रोशनी समझ कर चीख पड़ता था। उसी समय रीहानी तथा सूफी दाँत पीसते हुये जल्दी-जल्दी सीढ़ियों पर चढ़ते दिखाई पड़े। मैंने उन्हे पुकारा—"मुझे मछली की शक्ल की इत्र की शीशी कब ला दोगे ?"

यह सुनना था कि दोनों मुझ पर झपटे "यहाँ खड़ी है यह मक्कार बिल्ली! इत्र की नहीं, जहर की शीशी ला दूँगा। चलो, तुम्हें फाँसी दी जायगी। हम लोग निश्चय कर चुके हैं।"

मै डर गई—"फॉसी !"

"हॉ, बिलकुल !"

उसकी बातचीत के ढग तथा चेहरे का भाव देख मैं और भी भयभीत हो गई—"हाय, दया करो !"

"दया ?" और दोनों ठहाका मार कर हँसने लगे। फिर रीहानी कहने लगा—"गाय के सींग मे ऐसे पिरो दूँगा जैसे कपड़े में सुई !"

यह कह कर मुझे रीहानी ने दोनों हाथों में उठा लिया और अनार के पेड़ों से होते हुये बड़ी तेजी से गोशाला की ओर चला, जहॉ एक लाल रग की मरखनी गाय बन्धी रहती थी। मैं उसके हाथों में तड़प रही थी और चिल्ला रही थी—"खुदा के लिये छोड दो...मछली की शक्ल की ..देखो रोहानी...छोड़ दो .उफ लाल गाय...डर लगता है ..या अल्लाह ! मै मरी जाती हूँ !"

"मरो !" सूफी की आवाज आई—'शौक़ से मरो शरीर लडकी !"

मैं चीखने लगी—"हाय ! हाय ! ओफ ..या खुदा !"

"चीखोगी तो दीवार से सिर टकरा दूँगा। सुना ?" रीहानी ने कहा वह जल्दी-जल्दी गोशाला की ओर चला जा रहा था।

मेरी ऑखों में ऑसू थे—"मैंने क्या खता की है ?"

"खता ?" रीहानी डॉट कर कहने लगा—"तुमने दादा को बिलकुल मौके पर बुला लिया, उनका हैण्डवेग छिपा दिया। अब पूछती हो कि खता क्या है ? चोर बिल्ली, शैतान की नानी ! लो, गोशाला आ गई, गाय स्वागत के लिये तैयार है !"

पलट कर देखा, तो सचमुच गोशाला आ गई थी। हमे देख कर गाय सिर हिला कर उठ खड़ी हुई। "उफ !" मेरे मुँह से निकला और मै एकदम से कॉप गई। "रीहानी, रीहानी दया करो !"

जरूर कहूँगी। मछली की शक्ल की...दादा से जरूर इस बार कह दूँगी।" यह कह कर फिर जाने के लिये तैयार हो गई।

रीहानी ने दौड़ कर मुझे पकड लिया। सूफी भी पास ही खडी थी। बोली— 'रीहानी! तुम इसे, अभी इसी समय, मछली की शक्ल की इत्र की शीशी ला दो। ला दोगे न? जाओ, भागो बाजार।"

मैं मुस्कराई —"पर वह तो डाक्टर की चाय वाली बात का मूल्य था। इस समय की ज्यादती का क्या मूल्य दोगे? कोई बहुत कीमती उपहार दो। नहीं तो याद रक्खो, ऐसी गत बनवाऊँगी कि ..."

"अच्छा कहो, क्या चाहिये?" रीहानी ने ऐसे स्वर मे कहा, मानो उसका वश चलता, तो मेरा गला ही घोंट डालता।

पर मुझे उसके क्रोध की क्या परवाह थी। मैं बराबर मुस्करा रही थी।

"अच्छा, जल्दी कहो, क्या चाहिये?"

मैं तो ऐसी बात पहले ही से सोच कर तैयार रहती थी। तुरन्त कहा—" नाखून काटने और रँगने का नया सेट।"

"ओफ, नया सेट!" सूफी के मुँह से निकला।

"कोई हर्ज नहीं!" रीहानी कहने लगा—"मैं खरीद दूँगा, फिर दादा से तो कोई बात न कहोगी न?"

"नही।"

आह! छुट्टियो के दिन भी कितनी जल्दी बीत गये।

वे स्वर्गीय दिन बीत गये। प्यारा स्वदेश, घर और शरारते, प्यारे मित्र सूफी, रीहानी, दादा की पेचिश, उपहार सब स्वप्न की चीज हो गये। दादा ने कहा कि शनीचर को शाम को तुम्हे अपने कालेज चला जाना चाहिये।

"खुदा की मेहरबानी से अब अच्छे हो रहे हैं।—"परसों, तो बहुत बुरी हालत थी।" सूफी ने कहा—"अब डाक्टर का खयाल है कि दादा खतरे से बाहर हैं और धीरे-धीरे स्वस्थ हो जायेंगे।"

"शिकायत क्या थी?" मैंने पूछा।

"वही पेचिश, पुरानी बीमारी।" सूफी ने कहा।

"पुरानी बीमारी।" रीहानी कहने लगा—"दादा को इतने दिनों से पेचिश है कि अगर मुझे इतने दिनों से होती, तो इससे तीव्र प्रेम हो चुका होता।"

"हुश!" मैं कहने लगी—"ऐसी बातें करते हो? उनकी बीमारी जैसे तुम्हारे लिये हँसी-मज़ाक है। हाँ, उनकी बीमारी में तुम लोगों ने खूब गुल खिलाये होंगे। अफसोस! मैं न हुई, नहीं तो जी भर कर उपहार वसूल करती।"

"अब भी वसूल करो न।" सूफी कहने लगी—"अब भी मौका है। वह मछली की शक्ल की इत्र की शीशी तो रीहानी ने दी ही नहीं।"

"देखो, आज शाम तक ज़रूर पहुँच जाय, रीहानी।" मैंने कहा—"नहीं तो आजकल जब कि दादा बीमार हैं और नीचे नहीं आते, मैं तुम लोगों की छाया बनी रहूँगी और सारी बातें दादा से..."

"नहीं रूही, मैं आज ज़रूर ला दूँगा। इसके अतिरिक्त तुम जो कुछ माँगो, वह भी ला दूँगा। पर तुम हमारी छाया न बनी रहना।"

मैं उसकी इस असाधारण शिष्टता पर उसे चकित होकर देखने लगी—"जान पड़ता है, इस बीच में तुम बहुत शिष्ट हो गये हो, क्या बात है?" फिर कहा—"कहीं मेरी दुर्गति भी सवाली जैसी तो नहीं बनाना चाहते?"

"नहीं, नहीं।" रीहानी कहने लगा—"उस गधे की दूसरी बात थी।"

"अच्छा, तो शाम तक ला दोगे न! नहीं तो पिछले सब किस्से कह दूँगी और नई बातों की टोह में भी लगी रहूँगी।"

"पक्का वादा करता हूँ।" रोहानी ने कहा—"तुम तीन बजे बाग में उपहार ले लेना।"

"बहुत अच्छा!" यह कह कर मैं दादा को कोठे पर देखने गई। संयोगवश उस समय उनकी आँखें लग गई थीं, इसलिये मैं कमरे में अपना असबाब खोलने चली गई।

ठीक तीन बजे मैं नाशपाती के वृक्ष के नीचे सूफ़ी तथा रोहानी से उपहार वसूल करने के लिये मुस्कराती हुई बाग में आ पहुँची। यह देख मुझे आश्चर्य सा हुआ कि सूफ़ी तथा रोहानी वहाँ मेरे इन्तज़ार में पहले से खड़े थे।

"आइये, तशरीफ़ लाइये!" रोहानी ने अभिवादन करते हुये कहा।

मैं उसके इस अन्दाज़ पर थोड़ा झिझकी; किन्तु फिर मुस्करा कर आगे बढ़ी।

"लाओ मेरे उपहार! अगर आज न दोगे मख़मली की सामान की शीशी और नाख़ून लगाने का सेट, तो तुम लोगों की यह गत बना-ऊँगी, यह गत बनाऊँगी..."

"जी हाँ हम लोगों की यह गत बनेगी, यह गत बनेगी...कि..." यह कहते हुये रोहानी ने बढ़कर मुझे हाथों पर उठा लिया—बिल्कुल उसी तरह जिस तरह उस रात नाच के बीच में जिसे के नर्तन ने उठाया था।

"है यह क्या!" मैं झेंप कर बोली—"पहले मेरे उपहार लाओ।"

"इस बार उपहार तुम्हें की तरह में रखने हैं ख़ुशी से नाचते हुये" हँस कर कहा।

"यहाँ आकर तुम ले लेना।" रोहानी ने मज़ाक़ पसन्द किया।

मैं डर गई बोली—"मै दादा से कहूँगी ..तुम लोगों की सारी बाते कह दूँगी...मुझे छोड़ो मुझे छोड़ दो !"

"हाँ हाँ !" रीहानी कहने लगा—"सब बातें तुम बडी खुशी से दादा कह दो। लेकिन शायद इससे पहले तुम कुएँ की तह में बैठी होगी। नटखट लड़की! जीवन के आनन्द को मिट्टी में मिला रक्खा है। लो आ गया कुआँ, अब इतमीनान से इसकी तह की सैर करो। अच्छा !"

यह कह कर रीहानी ने अपने दोनों हाथ, जिनमें मैं तड़प रही थी, कुएँ पर बढा दिये।

मैंने नीचे देखा, तो अँधेरा कुआँ भायँ-भायँ कर रहा था।

मैने एक चीख़ मारी—"रीहानी !"

रीहानी हँसा—"अब लोगी उपहार ?"

सूफी हँस-हँस कर नाच रही थी।

रीहानी ने अपने हाथो की पकड ढीली कर दी।

"या खुदा..." मै चीख पडी, "मदद-मदद...मैं दादा से कह दूँगी...पापियो...दादा से..."

रीहानी बोला—"कह तो दिया कि खुशी से कह दो! यहीं से चिल्लाकर सारी बातें दादा से कह दो।"

मैं उसकी इस निर्भीकता पर चकित होकर उसे देखने लगी। दादा ही मेरे अन्तिम अस्त्र थे। मालूम होता था कि अब उस हथियार का डर जाता रहा है।

"सूफी, मदद करो!" मैं चिल्लाई।

"तुम्हे उपहार लेने की सनक है न। जाओ कुएँ की तह में। वहाँ बहुत से उपहार रक्खे हैं।"

यह सुनकर रीहाना मानो करीब-करीब मुझे छोड़ने लगा। कुएँ मे से एक भयानक स्वर निकलता प्रतीत होता था। मेरी आँखों के नीचे अँधेरा छा गया। मैने एक हृदय-विदारक चीख मारी—"हो...!"

"हो !" रीहानी ने नकल की।

"मुझे उप[illegible] चाहिये ।"

"तोबा करो !" रीहानी हँस कर कहने लगा ।

"तोबा' तोबा !" मैं विवश हो तोबा कहने लगी—"तोबा, तोबा !" फिर रोकर कहने लगी—"तोबा, तोबा ! सुनते हो तुम लोग ? तोबा, तोबा !"

सूफी ने ठहाका लगाया । पेट पकड़ कर हँसने लगी । रीहानी भी जोर-जोर से हँसने लगा । दोनों के चेहरे हर्ष से जगमगा रहे थे । मेरे चेहरे का हाल खुदा ही को मालूम होगा । हवाइयाँ उड़ रही होंगी, और क्या ?

जब ज़रा हँसी रुकी, तो सूफी बोली—"इसकी आँखें पथरा गई हैं । इसे छोड़ दो, रीहानी !"

आखिर रीहानी ने मुझे जमीन पर धर दिया । मेरी साँस उखड़ रही थी । दो क्षणों के बाद जरा सँभल कर बोली—"अब तुम देखना ऐसा मज़ा चखाऊँगी, ऐसा मज़ा..."

"मज़ा चखाने से पहले," रीहानी कहने लगा—"जितने उपहार मैंने तुम्हें दिये हैं, वे सब लाकर सीधे हाथ से सूफ़ी के हवाले कर दो ।"

मैं जल गई—"वाह, अच्छा हुक्म है ! सूफी को ? एक चीज़ भी माँगोगे, तो मैं तुम्हारी सारी बातें . "

"यह लड़की ऐसे काबू में न आयगी ।" रीहानी ने कहा—"इसे सचमुच कुएँ की तह में डुबाना चाहिये ।"

यह कहकर उसने फिर मुझे हाथों में उठ लिया ।

सूफी बोली—"अब की जरूर फेंक दो, रीहानी ।"

मैं वहीं से चिल्लाने लगी—"दादा जान ! दादा ! देखिये ये लोग सूफी और रीहानी...हाय हाय, आखिर क्या कर रहे हो, रीहानी ! क्या सचमुच जान से मार डालोगे ?" और मैं रोने लगी ।